ओ३म्

आर्य प्रतिनिधि सभा म.प्र. व विदर्भ का मुख पत्र | सितम्बर-अक्टुबर २०१६

आर्य सेवक

जे-जे सृष्टीक्रमाला अनुकूल असेल ते-ते सत्य आहे
आणि सृष्टीक्रमाच्या विरुद्ध असणारे सर्व असत्य आहे.

सभा कार्यालय - दयानन्द भवन, मंगलवारी बाजार, सदर, नागपुर (महाराष्ट्र)

अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन नेपाल २०१६

दिनांक २०, २१ तथा २२ अक्टूबर २०१६

यात्रा नं. १

केवल अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन हेतु

(अ) हवाई जहाज व्दारा प्रस्थान

दिलली से १९.१०.१६ को ४ रात ५ दिन

१९ अक्टूबर से २३ अक्टूबर २०१६ तक

वापसी काठमांडू से २३. १०. १६

यात्रा व्यव

यात्रा व्यय र ३५,००० प्रति व्यक्ति ५ सितारा होटल के लिये

यात्रा व्यय र २७, ००० प्रति व्यक्ति ३ सितारा होटल के लिये

यात्रा व्यय र २५, ००० प्रति व्यक्ति अतिथि भवनों के लिये

यात्रा व्यय की सम्पूर्ण राशि एक ही बार में सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली के नाम बैंक ड्राफ्ट व्दारा निम्न प्रते पर तत्काल भेजनी होगी.

यात्रा नं. १

नेपाल सम्मेलन तथा पोखरा यात्रा

हवाई जहाज व्दारा प्रस्थान ७ रात ८ दिन

दिल्ली से १७. १०. १६ को वापसी काठमांडू से २४. १०. १६

,, १८. १०. १६ वापसी काठमांडू से २५. १०. १६

,, १९. १०. १६ वापसी काठमांडू से २६. १०. १६

एक ही दिन में ज्यादा हवाई टिकटें उपलब्ध न होने के कारण तीन अलग-अलग तारीखों में थोडी- थोडी टिकटें खरीदी जा सकी है। सम्मेलन से पहिले या बाद में ए. सी. बसों व्दारा पोखरा की यात्रा की जायेगी। पोखरा प्राकृतिक सौंदर्य से भरपूर बहूत ही रमणीय स्थान है। यहाँ पर दो रात्रि का विश्राम रखा गया नं. २ के अन्तर्गत काठमान्डू में एक दिन का अतिरिक्त विश्राम भी शामिल है जिससे कि संम्पूर्ण यात्रा आरामदायक रहे।

यात्रा व्यय रू ४६,५०० प्रति व्यक्ति ५ सितारा होटल के लिये

यात्रा व्यय रू ३६, ००० प्रति व्यक्ति ३ सितारा होटल के लिये

यात्रा नं. २ के लिये सम्पूर्ण राशि का बैंक ड्राफ्ट सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली के नाम बनवाकर भेजे.

यात्रा सम्बन्धी अन्य जानकारी हेतु आप निम्न महानुभावों से सम्पर्क कर सकते है।

१) श्री. प्रकाश आर्य - ०९८२६६५५११७

२) श्री. अरुण वर्मा - ०९८१००८६७५९

३) श्री. एस.पी. सिंह - ०९५४००४०३२४

४) श्री. शिवकुमार मदान - ०९३१०४७४९७९

.....***.....

प्रदेश की वार्ताएँ

पूर्व उपदेशक दिगम्बर दाभाडे का वियोग

सोनाला,

सभा के पूर्व उपदेशक दिगम्बर दाभाडे जी का स्वर्गवास गत माह उनके घर पर हुआ। उनके पश्चात् दो-पुत्र, एक लड़की एवं धर्मपत्नी है। स्व. दाभाडेजी ने कई यवनों की शुद्धियाँ की है। सोनाला में सार्वदेशिक स्तरपर सम्मेलन लिया था। जिस में सार्वदेशिक सभा के तत्कालिन प्रधान स्व. रामगोपालजी शालवाले पधारे थे। शांतियज्ञ में सभा प्रधान पं. सत्यवीर शास्त्री और सभा लेखानिरीक्षक श्री. रमेशजी घोडसकर पहुँचे थे।

- पं. सत्यवीर शास्त्री

.....***.....

पथरोट के दानी तुळशीरामजी काळे दिवंगत

पथरोट : आर्य समाज पथरोट के वरिष्ठ सदस्य तुळशीरामजी काळे इनका निधन वृद्धत्व के कारण हुआ। आप आर्यसमाज के सक्रीय सदस्य दानदाता और प्रतिष्ठित नागरिक थे। आपका अत्येंष्टि संस्कार संपूर्ण वैदिक संस्कार विधि के अनुसार श्री. विनायकरावजी हरणे, श्री. ओमप्रकाशजी बोबडे, श्री. शरदरावजी कोसरेजी ने संपन्न कराया। अत्येंष्टि संस्कार में गाँव के प्रतिष्ठित नागरिक एवं सर्वसाधारण जनता भी भारी संख्या में उपस्थित थी। आर्य समाज परसापुर-कुष्ठा शिंदी-अंजनगाँव-टाकरखेडा आदि आर्य समाजों के सदस्य भी शोक सभा में सम्मिलित थे।

भारत की तीन महान् अनुपम आत्माएँ

– श्रीमती अरूणा सतीजा

इन तीन महान् आत्माओं के नाम भारतीय इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में अंकित है जिन्हें समय की परिधि भी धूमिल नहीं कर सकती। इनकी जीवनगाथा से सम्बन्धित कितने ग्रंथ क्यों न लिखे जाए परन्तु फिर भी कुछ शेष रहेगा।

यह तीन अमर विभूतियाँ हैं-महर्षि देवदयानन्द जिनका महाप्रयाण तीस अक्टूबर को हुआ अन्य दो आत्माएं महात्मा गांधी जी एवं अद्भुत मानवीय गुणों के प्रतीक अमर शहीद लाल बहादुर जी शास्त्री। इन दोनों का जन्म ०२ अक्टूबर को ही हुआ था जो अक्टूबर मास की महानता को बढ़ाता है। यह तीनों अमर आत्माएं मानो एक दूसरे की पूरक थी। ऐसा प्रतीत होता है कि महर्षि के सिद्धान्तों के अवशेषों पर महात्मा गांधी जी का प्रत्यारोपण किया गया है।

महर्षि भारत की इस पावन धरती पर अवतरित हुए थे। वह ईश्वर पुत्र थे। ईश्वरीय गुण उनमें जन्म से विद्यमान थे जेसे प्रति वर्ष असंख्य शिव-भक्त चूहों को शिव पिंड पर चढ़ते देखते थे, है और देखते रहेंगे। परन्तु मात्र मूल शंकर को ही उस शिव पिंड में सच्चे शिव के दर्शन क्यों नहीं हुए। क्योंकि वह सच्चा शिव था ही नहीं। मात्र एक पत्थर का बना प्रतीक था। देव दयानन्द सब कुछ छोंड़कर सच्चे शिव की खोज में निकल पड़ा। सच्चे शिव की खोज में वह कहाँ-कहाँ नहीं भटकाफ घने-घोर जंगलो में, गुफाओं में, मन्दिरों में, कन्दराओं में मठों में मेलों में परन्तु कहीं भी सच्चा शिव नहीं मिला। अन्त में मथुरा में गुरु विरजानन्द के चरणों में बैठकर तीन वर्षो तक कठोर परिश्रम कर सच्चे ज्ञान को प्राप्त किया। गुरु दक्षिणा के समय गुरु विरजानन्द जी ने कहा है। कालजयी दयानन्द मैनें तुझ में एक आग देखी थी उसे मैंने सही दिशा दे दी है। अब तुम जाओ सारा संसार तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। संसार में जाकर दुःख पीड़ा व विभिन्न सन्तापों से तपती तड़फती मानव जाति का कल्याण करो। महर्षि ने देखा देश पराधीन है, शोषित है, अछूत है, दलित है, दरिद्र है और अन्धविश्वासों से घिरा है। अनेकों मत, पंथ व सम्प्रदाय है।

गुरुजनों का बोलबाला है। मानव सच्चे ईश्वर से दूर बहुत दूर जा चुका है। महर्षि ने मानव जाति को वेदों की ओर लौटने की सही राह दिखाई। क्योंकि वेद ही ईश्वरीय ज्ञान है। वेद ही सब सत्य विद्याओ की पुस्तक है। इसमें रेत के कण से कर सम्पूर्ण ब्रह्मांड का ज्ञान समाया हुआ है वेदों का भाष्य किया। उनके द्वारा रचित सत्यार्थ प्रकाश एक ऐसा बहुआयामी ग्रंथ है जो अकेला ही मानव जीवन की सभी समस्याअें का समाधान प्रस्तुत करता है। जिस किसी ने भी इस ग्रंथ को पढ़ा उसका जीवन ही बदल गया। गुरुदत्त विद्यार्थी नास्तिक से आस्तिक बन गये। भगत सिंह, सावरकर जैसे असंख्य क्रान्तिकारी हँसते-हँसते फाँसी के फन्दे पर चढ़ गये।

नारी शिक्षा, नारी उद्धार व सुधार, अछूतोद्धार, गौहत्या, सती प्रथा, जातिवाद तथा अनेकों प्रकार की सामाजिक अन्धविश्वासों आदि का उन्मूलन किया।

इनके शिष्यों ने इनके अधूरे कार्यो को पूरा करने का जी जान लगाकर प्रयास किया। जालंधर में कन्या विद्यालय की स्थापना की गई ताकि हिन्द कन्याओं को ईसाई स्कूलों में न जाना पड़े। महर्षि देवदयानन्द जी की मृत्यु के पश्चात् उनकी स्मृति में डी.ए.वी. स्कूल की लाहौर में स्थापना की गई जो अंग्रेजी प्रशासन को शिक्षा के क्षेत्र में प्रत्यक्ष चुनौती थी। प्राचीन गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली को पुनः जीवित करने के उद्देश्य से स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा गुरुकुल कागड़ी की स्थापना की गई। महात्मा गांधी जी जब स्वदेश से लौटे तो स्वामी श्रद्धानन्द से मिलने तथा गुरुकुलीय प्राचीन शिक्षा पद्धति का अवलोकन करने हेतु गुरुकुल कागड़ी गये। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने उन्हें महात्मा कह सम्बोधित किया। तब से गांधी जी महात्मा के नाम से जाने जाते है।

महर्षि पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने सर्वप्रथम स्वराष्ट्र का नारा बुलन्द किया। उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा परराज्य कितना भी अच्छा क्यों न हो परन्तु स्वराज्य सम नहीं। एक अंग्रेज ने स्वामी जी से कहा आप साधु हो भगवान से प्रार्थना किया करो कि हमारा शासन भारत में बना रहे। स्वामी जी उत्तर दिया मैं प्रतिदिन यही प्रार्थना करता हूं कि भारत से ब्रिटिश-साम्राज्य का अन्त शीघ्र अति शीघ्र हो जाए। इतना कहना उन दिनों तलवार की धार पर चलना था। अर्थात् मौत को खुली चुनौती देना था। महर्षि दयानन्द पहले व्यक्ति थे जिन्होंने भारतीयों की दुःख पीड़ा को समझा

और चतुर सर्जन की तरह उसका ऑपरेशन किया कि जब तक देश स्वतन्त्र नहीं होगा तब तक भारतीय जनता अंग्रेजों द्वारा शोषित होती रहेगी। अपने ओजस्वी भाषणों तथा उपदेशों द्वारा देश के नौजवानों में राष्ट्र प्रेम की ज्योति प्रज्जवलित कर उन्हें देश पर मर मिटने की प्रेरणा दी। महात्मा अरविन्द के शब्दों में महर्षि क्या थे वह सब कुछ थे उस अकेले में वह सब विशेषताएं थी जो अन्य सब में थी। असमय मृत्यु के कारण उनके अरमान पूरे नहीं हो पाये तभी तो जीवन की अन्तिम घड़ी में यह शब्द कहते हुए प्राण त्याग दिये हे ईश्वर तूने अच्छी लीला की तेरी इच्छा पूर्ण हो।

२ अक्टूबर सन् १८६९ ई. में भारत की पावन धरती पर एक फरिश्ते का पदार्पण हुआ जो भविष्य में भारत का भाग्य विधाता व निर्माता बना। वह एक साधारण व्यक्ति से पहले महात्मा तथा बाद में राष्ट्रपिता कहलाए। उनके जीवन सार को पढ़ने के बाद ऐसा प्रतीत होता है कि मानो ईश्वर ने उन्हें महर्षि के अधूरे कार्यो को पूरा करने के लिए एक देवदूत को भारत में नियुक्त किया है। जब वह बैरिस्टर बनकर स्वदेश लौटे तो उन्होंने देखा कि गोरे लोगो की सरकार ने भारत वासियों पर दमनकारी चक्र चला रहा है। जब वह स्वयं एक मुकदमे की पैरवी करने दक्षिण अफ्रीका गये तो फर्स्ट क्लास का टिकट लेकर वे फर्स्ट क्लास के डिब्बे में बैठ गये थोड़ी देर बाद गोरे मुसाफिर गाड़ी में चढ़े उन्होंने एक भारतीय की उपस्थिति को अपना अपमान समझा पुलिस द्वारा गांधी जी को बीच रास्ते में ही उतार दिया। ऐसी अन्य अपमान जनक घटनाओं ने उनकी जीवन दिशा बदल दी। अफ्रीका में प्रत्येक भारतीय को कुली कहकर पुकारा जाता वह कितने भी बड़े पद प क्यों न हो। बिना आज्ञा के वह बाहर नहीं निकल सकते थे। गांधी जी स्वयं दो बार गोरों की लाठी व घूंसो के शिकार हो चुके थे। उन्होंने भारतीय जनता का आह्वान किया कि हमें इन गोरों के अमानवीय व्यवहार का पूरी शक्ति से विरोध करना चाहिए। उनके इस संकल्प ने क्रान्ति के एक नये स्वरूप सत्याग्रह को जन्म दिया। सत्याग्रह संग्राम काफी लम्बे समय तक चला जिसने आगे चलकर राष्ट्रीय आन्दोलन का रूप ले लिया। इस आन्दोलन के कारण उन्हें अनेकों बार जेल जाना पड़ा। वह २४९ दिन अफ्रीका में और २०८९ दिन भारत की जेलों में यातनाएं सहन की। अनेकों बार उपवास व अनशन किये। जलियांवाला बाग के नरसंहार के पश्चात रोल एक्ट का विरोध सविनय अवज्ञा आन्दोलन, नमक कानून के विरूद्ध दांडी यात्रा आदि कोई सरल कार्य नहीं थे। उन्होंने अनुभव किया कि शक्ति के बल पर ब्रिटिश सरकार का मुकाबला करना कठिन ही नहीं परन्तु असम्भव है। उन्होंने अहिंसा को अपना शस्त्र बनाया। गांधी जी की अहिंसा कोई कायरता या निर्बलता नहीं थी। उनके अनुसार जो लोग मरना जानते है उन लोगों तक मैं अहिंसा का सन्देश पहुँचाता हूँ।

अन्त में लम्बे संघर्ष के पश्चात उन्हें सफलता मिली। लगभग २०० वर्षो से भारत में घर बनाकर बैठी अंग्रेजी सत्ता समाप्त हुई। १५ अगस्त १९४७ को हमारे स्वतन्त्र भारत का तिरंगा लाल किले की प्राचीर पर लहराने लगा। महर्षि को भी यह सब देखकर आनन्द की अनुभूति हुई होगी। आज का स्वतन्त्र भारत उनकी देन है। गांधी जी हमारे राष्ट्रपिता है, हमारे आदर्श है, मार्ग दर्शक है।

महर्षि की तरह गांधी जी भी स्वदेशी के पक्षधर थे परन्तु देश की उन्नति व विकास के लिए उनकी विदेशी मशीनों से भी परहेज नहीं था। राष्ट्र के विकास का आधार ग्रामोत्थान को मानते थे। क्यांकि भारत गांवो में ही तो बसा है। देश की गरीबी देख उन्होंने अर्द्ध वस्त्र पहनने शुरु किये। गांधी जी ने अछूत कही जाने वाली जाति के लोगों को हरिजन नाम दिया। वह स्वयं को सबसे बड़ा भंगी कहते थे। एक व्यक्ति ने गांधी से पूछा अगर स्वतन्त्र भारत में आपको राष्ट्रीय अध्यक्ष बना दिया जाये तो आप सबसे पहला काम क्या करोगे? गांधी जी का उत्तर f दिल्ली की हरिजन बस्तियों में जाकर उनकी झोंपड़ियों की सफाई करूंगा। उनमें लेशमात्र भी अहंकार नहीं था। वह मानवता से ऊपर उठ चुके थे। चत्रि बहुत पवित्र था। वासनाओं पर उन्होंने विजय प्राप्त कर ली थी। काम, क्रोध, मद, मोह उनके दास थे। वह कए समाज सुधारक राजनीतिज्ञ, साहित्यज्ञ औ देशभक्त महान व्यक्ति थे। अतः अपने जीवन काल में उन्हें जितना सम्मान मिला उनता कदाचित किसी अन्य व्यक्ति को मिला होगा।

वह सभी धर्मों का समान रूप से आदर करते थे। गांधी जी ने कहा-ईश्वर जीवन है, सत्य है, प्रकाश है, परम मंगल है, प्रेम है। सत्य की आराधना ही सच्ची भक्ति है।

हमारा शरीर एक मन्दिर है। हम बाहर से उसमें कोई मैल नहीं भरे। यदि ईश्वर नहीं तो हम भी नहीं हो सकते। इसीलिए हम सब एक आवाज में उसे अनेकों ओर अनन्त नामों से पुकारते है। ताकि उस परम शक्ति के ऊँचे आदर्श त्याग और बलिदान की उत्कृष्ट भावना हमारे जीवन का भी

अंग बने।

गांधी जी ने कहा था- मेरा जीवन मेरा सन्देश है। आइन्स्टाइन ने कहा था-आने वाली पीढ़ियाँ शायद ही इस पर विश्वास करें कि ऐसा कोई पुरुष मनुष्य देह में इस पृथ्वी पर विचरण कर गया होगा।

आज शास्त्री जी हमारे मध्य नहीं रहे लेकिन उनकी अद्भुत कार्य क्षमता उनका व्यक्तित्व सदा हमारे साथ रहेगा। स्वर्गीय शास्त्री जी हमारे देश के उन महान् व्यक्तियों में थे जिनका स्मरण करके अनेकों वर्षो तक हमारे देश के निवासियों को प्रेरणा मिलती रहेगी। उन्होंने अपने कर्मठ जीवन द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि एक निर्धन परिवार में जन्म लेकर भी कोई व्यक्ति अपने कठिन परिश्रम, सादगी, सरलता एवं कुशल व्यवहार से उच्चतम पद को प्राप्त कर सकता हे। उन्होंने अपनी गरीबी के वे दिन अन्त समय तक नहीं भुलाए। उनका दृढ़ संकल्प वाला स्वीाव ही उन्हें उच्च पद पर आसीन कर सका। उन्नीस मास के प्रधानमन्त्रीत्व काल में उन्होंने अनेको अभूतपूर्व कार्य किये तथा निर्णय लिये। उनका सबल नेतृत्व सदा-सदा के लिये याद रहेगा। उनका मुख्य नारा था- जय जवान जय किसान जो आगे चलकर उनकी पहचान बन गया। वह अल्पकाल में ही भारतीय जनमानस के आराध्य बन गये। भारत माता की सेवा एक सच्चे सपूत की तरह की। इनमें स्वार्थ लेशमात्र भी नहीं था। उन्होंने जो विश्वव्यापी प्रसिद्धि अर्जित की उसकी याद उसकी गाथा उसकी स्मृति, उनके कार्य प्रत्येक भारतीय के लिए ही नहीं बल्कि प्रत्येक मानव के लिये प्रेरणास्पद है। नैतिक जीवन में हमें उनका सानी हमें कोई नहीं मिलता। अपने देश एवं विश्वशांति के लिए अपने प्राणों की बाजी लगाने में पीछे नहीं रहे। समस्त मानव जाति की सेवा उनकी उत्कृष्ट अभिलाषा थी। शास्त्री जी ने अल्प समय में जो कार्य किये, जिस निष्ठा का परिचय दिया जो उत्साह दिखाया वह शताब्दीयों के इतिहास में भी पढ़ने सुनने को नहीं मिलता। स्वतन्त्र भारत के प्रधानमन्त्रियों की सूची में उनको प्रथम स्थान प्राप्त है।

आज उनकी जयन्ती पर हम सब प्रतिज्ञा करें कि हम भी शास्त्री जी के आदर्शो को अपने जीवन में उतारेंगे।

- सौम्या अपार्टमेन्ट, फ्लैट नं. १०१, बी-९, ध्रूव मार्ग,
तिलक नगर, जयपुर-३०२००४, मो.९४६०१८३८७२

साभार : टंकारा समाचार

.....***.....

आर्य समाज सान्ताक्रुज़ में वेद प्रचार समारोह सम्पन्न

आर्य समाज सान्ताक्रुज़ (प.) मुम्बई द्वारा शुक्रवार दि. २६ अगस्त से रविवार दि. २८ अगस्त, २०१६ तक आर्य समाज सान्ताक्रुज के वृहद सभागार में वेद प्रचार समारोह उत्साहपूर्वक मनाया गया। इस अवसर पर प्रतिदिन प्रातः ८.०० से १०.०० बजे तक ऋग्वेद यज्ञ का आयोजन किया गया। यज्ञ के ब्रह्मा एवं वक्ता डॉ. सोमदेव शास्त्री जी (मुम्बई) थे। यज्ञ में वेदपाठी पं. नामदेव आर्य, पं. विनोद कुमार शास्त्री, पं. नरेन्द्र शास्त्री, पं. प्रभारंजन पाठक एवं पं. नचिकेता शास्त्री थे। रात्रि कालीनसत्र में ७.४५ से ९.३० बजे तक प्रवचन डॉ. सोमदेव शास्त्री जी एवं भजनोपदेश श्रीमती स्नेह पुरी, श्री प्रभाकर शर्मा जी के होते रहे।

वेद प्रचार के शुभावसर पर द्विदिवसीय पूर्ण रहिवासी शिबिर रखा गया। उसके अध्यक्ष व संचालनकर्ता डॉ. सोमदेव शास्त्री जी थे।

इसी क्रम में रविवार दि. ८ अगस्त, २०१६ को त्रि दिवसीय ऋग्वेद यज्ञ की पूर्णाहुति प्रातः ८.०० से ०९.४५ बजे तक हुई। प्रातःराश के पश्चात् १०.०० बजे से कार्यक्रम का शुभारम्भ हुआ। तद्नन्तर सुप्रसिद्ध भजनोपदेशक श्रीमती स्नेह पुरी व श्री प्रभाकर शर्मा जी ने प्रभु भक्ति एवं स्वामी दयानन्द पर आधारित सुन्दर गीत प्रस्तुत किये। डॉ. सोमदेव शास्त्री जी ने वेद मंत्रो की सुंदर व्याख्या करते हुए तर्को प्रमाणो तथ्यों उदाहरों से श्रोताओं लाभान्वित किया। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वेद का प्रचार प्रसार किया था तथा आर्य समाज की स्थापना भी इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए की थी अतः हम सबको वेदों का सार्वजनिक प्रचार प्रसार करना होगा। ईश्वर एक हैं उसी कए शुद्धतम ईश्वर की उपासना करके ही लोग कष्टों से मुक्त हो सकेंगे। आप के वैदिक सिद्धान्तों से ओत-प्रोत सारगर्भित, प्रेरणादायक प्रवचन हुए। आर्य समाज सान्ताक्रुज़ के प्रधान श्री चन्द्रगुप्त आर्य तथा श्री लालचन्द आर्य आमंत्रित अतिथिओं का माल्यार्पण कर अभिनन्दन किया। प्रधान जी ने सभी उपस्थित विद्वानों, अतिथियों, श्रोताओं एवं कार्यकर्त्ताओं तथा सहयोगियों एवं दानदाताओं का हार्दिक आभार व्यक्त करते हुए धन्यवाद दिया। मन्त्री श्री संदीप आर्य तथा मन्त्री श्री रमेश आर्य एवं महामन्त्री श्री संगीत आर्य ने क्रमशः सम्पूर्ण कार्यक्रम का संचालन किया। शान्तिपाठ एवं जयघोष के साथ कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। तत्पश्चात सभी ने प्रीति भोज का आनन्द लिया।

सबकी उन्नति में स्वयं की उन्नति, शारीरिक, आत्मिक एवं सामाजिक उन्नति

श्रावणी पर्व एक चिन्तन

– गंगा शरण आर्य

भारत वर्ष ऋषियों - मुनियों की पावन धरती होने का गौरव रखता है। आदि सभ्यता का उद्गम स्थल होने का गौरव भारत को ही है। हमारे ऋषियों ने समय-समय पर मानव को संस्कारित करते रहने के लिये इन्हे अपना कर्तव्य बोध करवाने के लिये कुछ सीखते रहने की परम्परा अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए अनेक पर्वो त्योंहारो व उत्सवों की एक लडी सी बनाई है। इन पर्वो, उत्सवों को मनाने की नियमावली जो हमारे ऋषियों ने दी है उनके माध्यम से हम जाने में ही नहीं अनजाने व अनचाहे भी बहुत से उपकार, नवनिर्माण व धर्म के उत्थान के कार्य कर जाते हैं जो हमें अपने आप साधारण जीवन की दैनिक व्यस्तताओं की अवस्था में कर पाना सम्भव नहीं हो पाता ऐसे ही पर्वो में श्रावणी पर्व तथा रक्षाबन्धन भी एक है। पर्व कहते है पूरक तथा ग्रंथी को। श्रावणी पर्व जीवन में आनंद भर देता है। तथा ग्रंथी होने से उसकी रक्षा भी करता है। जिस प्रकार गन्ने में ग्रन्थियों के करण ही मधुर रस सुरक्षित रहता है वैसे ही वैदिक पर्व मनुष्य के जीवन में संस्कृति और सभ्यता को बनाए रखते है।

भारत में चौमासा के नाम से प्रसिद्ध चार-महिने ऐसे होते हैं जिनमें वर्षा के कारण अनेक भूमिगत व जहरिले सर्प, बिच्छु,कान खजूरे आदि अनेक जीव भूमि से बाहर निकल आते हैं इस अवस्था में सुरक्षा की दृष्टि से प्राचीन काल से ही ऋषि - महात्मागण जंगलों, पर्वतों से बाहर निकलकर, नगरों के समीप आकर किसी स्थान को केंद्र बनाकर आवास करते थे तथा अपने अनुभव स्वाध्याय तथा तप से, परिक्षम सेसाधना से उन्होने जो ईश्वरीय ज्ञान एकत्र किया होता था उसे वह अपनी सेवा सुश्रुषा के बदले जन सामान्य में बांटते थे। आयै समाजों में भी वही परम्परा स्थापित करते हुए श्रावणी उपाकर्म का विधान किया गया है। इसे श्रावणी इसलिए कहा जाता हैक्योंकि यह श्रावण माह भी इन्ही चार महीनों में आता है। श्रावण मास अत्याधिक वर्षा का महीना होता है। सभी जलाशय, नदी, न केवल भरे होते हैं अपितु उफान पर होते हैं, ऐसे में सभी प्रकार के कार्य बाधित होते हैं चाहे वह कृषि का कार्य हो अथवा व्यापार का। यह उल्लास का पर्व है उल्लास एक ऐसी सुगन्ध है जिसे जितना प्रयोग करो वह बढती ही चली जाती है। यही कारण है कि ऋषियों ने जो सुगन्ध वर्ष भर केप्रयास के एकत्र की होती है इस पर्व पर वह इसे जनसामान्य में बाँट देते है यही कारण है कि युनान, मिस्र जैसे राष्ट्रों के नष्ट होने पर भी सर्वाधिक प्राचीन यह भारत आज भी न केवल जीवीत है अपितु अब भी विश्व का एक बडा भाग इससे मार्गदर्शन पा रहा है। कहने का तात्पर्य है कि श्रावनी नक्षत्र से युक्त पूर्णिमा को यह पर्व मनाया जाता है इसलिए इसका ना श्रावणी सावनी पर्व है और यह परम्परा आधुनिक नहीं अपितु वैदिक काल से प्रचलित है। श्रावणी पर्व आर्यो का एक महत्वपूर्ण पर्व है। क्योंकि इसका सीधा सम्बंध वेदाध्ययन से है। वर्षा के चार मास के अन्तर्गत विशेष रुप से वेद परायण यज्ञों का आयोजन किया जाता है। ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य, वै, शूद्र आदि सब वर्ण के लोग इस चौमासे के दौरान विश्राम करते हैं अर्थात् सब के कार्यक्षेत्र में शान्ति होती है व्यवसाय में भी शिथिलता होती है भारत कृषि प्रधान देश है। इस काल में किसानोंको भी अवकाश रहता है और संन्यासियों के लिए भी बारिश के मौसम में गृहस्थियों के पास जाने का सुअवसर प्राप्त होता है क्योंकि शेष महीनों में व ग्रामों तथा बड़े नगरों से दूर अपने आश्रमों में स्वाध्याय एवं साधनादि के कार्यों में व्यस्त रहते हैं तथा चौमासे में र्षा के कारण अरण्य (जंगल) और वनस्थली को छोड़कर ग्रामों और नगरों में रहकर वेदाध्ययन धर्मोपदेश ओर धर्मचर्चा करते हैं इससे उनके समय का सदुपयोग भी होता है। श्रद्धालु, श्रोतागण, महात्माओं सनतों तथा वैदिक, प्रवक्ताओं के आगमन से प्रसन्न होते हैं तथा उनके प्रवचनों से लाभ उठाते हैं-यही ऋषि तर्पण है अर्थात् स्वाध्याय के द्वारा ऋषियों की पूजा (उनकी आज्ञा मानना, उनकी बात मानकर अपनी जीवन शैली में परिवर्तन करना) है।

वैदिक काल में सब लोग वेद तथा आर्ष ग्रन्थों का स्वाध्याय करते थे, कभी प्रमाद नहीं करते थे। कालान्तर में विशेषकर वर्तमान से लगभग पाँच हजार वर्ष पूर्व से, महाभारत युद्ध के पश्चात् वेदों के पठन-पाठन में शिथिलता आने लगी। इसका मुख्य कारण वैदिक-विद्वानों तथा श्रद्धालु श्रोताजनों का अीाव होता रहा और परिणाम यह हुआ कि

लोगों की स्वाध्याय करने की प्रवृत्ति लुप्त हो गई जिसके फलस्वरूप आधुनिक समाज में अनेक स्वार्थियों लुटेरों ने अनगिनत पाखण्डों को जन्म दिया। अतः भोले-भाले, सीधे-सादे लोगों के दिलों में अनेक प्रकार के अंधविश्वास तथा अन्धश्रद्धाओं जैसे शत्रुओं ने घर कर लिया। यह सब स्वाध्याय की प्रवृत्ति जागृत हो जावे तो समाज में फैलते हुए पाखण्डों को रोका जा सकता है तथा धर्म के नाम पर धर्म के भक्षकों को सबक सिखाया जा सकता है। वर्तमान में तो ऋषि तर्पण का लोप हा चुका है तथा उसके नाम पर अनेक प्रकार के पाखण्ड और अन्धविश्वास चल पड़े हैं जैसे श्रावणी के दिनों में सांपों को दूध पिलाना, दी अथवा तालाबों में जाकर स्नान करना, घर की दीवारों पर श्रावण श्री काल्पनिक मूर्तियां बनाकर उनको सेवियां खिलाना, पंडों द्वारा मनघढण्त कथाएँ बाँचना इत्यादि। नासमझी की हद हो गई है।

स्वाध्याय में प्रमादता के कारण ही हम साधु, सन्त, महात्मा, गुरू इत्यादि की पहचान करने में असमर्थ होते हैं। वर्तमान में हर गली कूचे में तथाकथित गुरू, सन्त, साधु, महात्मादि अपनी दुकानें चला रहे हैं। ये वाक्य केवल ब्रह्मचारी के लिए ही नहीं अपितु सब मनुष्यों पर लागू है क्योंकि स्वाध्याय के अभाव में मनुष्य विद्या प्राप्ति से वंचित रह जाता है (स्वाध्याय का अर्थ विस्तारभय से यहाँ पर न करके पाठकवृन्द के हितार्थ संक्षिप्त में लिखते हैं-स्वाध्याय का सामान्य अर्थ है जिन ग्रन्थों के पढ़ने से ज्ञान प्राप्त हो और ज्ञान के स्त्रोत वेद हैं अतः वेद तथा वैदिक वाड़ःमय का अध्ययन करना ही सही मायनों में स्वाध्याय कहाता है। इसे आर्ष ग्रन्थों के पठन-पाठन की क्रिया भी कह सकते हैं। स्वाध्याय का दूसरा अर्थ है स्व+अध्याय यानि स्वं को पढ़ना अर्थात् आत्म निरीक्षण करना अथवा अपने कर्मों का अवलोकन करके अपने गलतियों को सुधारना। श्रावणी पर्व में स्वाध्याय का विशेष महत्व होने से इस पर्व में वैदिक ग्रन्थों के स्वाध्याय का विशेष उपक्रम अर्थात् प्रारम्भ करना चाहिए जिसका समापन अर्थात् उत्सर्जन साढ़े चार महीनों के पश्चात् किया जाता है (ऋषियों का तृप्तियों का तृप्किारक होने के कारण पीछे से उपाक्रम का नाम ऋषि तर्पण पड़ गया। आज ऋषि तर्पण का भी लगभग लोप हो चुका है और उसके नाम पर उपरोक्त बताए गए अनेक पाखण्डों व अन्धविश्वासों ने ले लिया है) हमारे सभी पर्वों की यह विशेषता है कि ये ऋतु-परिवर्तन तथा पर्यावरण के अनुकूल ही मनाये जाते हैं। भारतीय नववर्ष बसन्त ऋतु से प्रारम्भ होकर शिशिर ऋतु की समाप्ति के साथ समाप्त हो जाता है। भारतीय तिथि-पत्र पद्धति के बारह मास के नाम इस प्रकार हैं-चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, अश्विन (आसुज, क्वॉर), कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुन। चैत्र और बैशाख मैं; बसन्त ज्येष्ठ और आषाढ़ में ग्रीष्म, श्रावण और भाद्रपद में वर्षा, आसुद, और कार्तिक में शरद, मार्गशीर्ष और पौष में हेमन्त तथा माघ और फाल्गुन में शिशिर ऋतु का आगमन होता है। बसन्त ऋतु में पत्र विहीन डालियों वाली वनस्पतियों में पुनः नवीन पल्लव व कोंपले फूट पड़ती हैं, विकसित होती हैं। प्रकृति पल्लवित और पुष्पित होती है। ग्रीष्म ऋतु में जहाँ गरम प्रदेशों में रहने वाले चिलचिलाती धूप से विचलित होकर वट, पीपल, आम्र आदि वृक्षों की धनी छाया का आनन्द लेते हैं, वही शीत प्रदेशों में रहने वाले धूप में शरीर तापने का स्वाद लेते हैं। वर्षा ऋतु में जहाँ ग्रीष्म की गरमी से व्याकुल मनुष्य, वर्षा की प्रथम बूंदों के धरती पर गिरने से उठी सौंधी-सुगन्ध आनन्द लेते हुए वर्षा की आनन्दमयी बौछारों से शीतल होते हैं वही शरद ऋतु में आकाश से बादल छट जाते हैं ज्योत्सना पूर्ण बेला में माता भूमि से ही वनस्पतियाँ और औषधियाँ प्राणदायिनी मधुर रसों को ग्रहण करती हैं, आम आदि मधुर फल भी ज्यो सना में ही रस को प्राप्त करते हैं चन्द्रमा में आकर्षण शक्ति होने के कारण ही समुंद्र में ज्वार भाटा आते हैं। हेमन्त ऋतु में शीत की वृद्धि होती है सन्ध्या बेलाओं में धरती को धुन्ध ढ़क देती है। आकाश में हिमपात होता है, ऊँचे-ऊँचे पहाड़ सफेद बर्फ से ढ़क जाते हैं पर्वतों की चोटियाँ रूई सदृश हिम से (बर्फ से) ढ़की हुई ऐसी दिखाई देती है जैसे स्वेत किरीटों को धारण किए हो। शिशिर ऋतु में प्रकृति का वार्षिक कायाकल्प हो जाता है, पतझड़ के कारण सभी वृक्ष नग्न हो जाते हैं, पतली टेढ़ी टहनी अगणित शिरा जाल सी फैली गुम्फित (अर्थात् जेसे शरीर में शिराएं फैली हुई भी आपस में गुथी हुई) प्रतीत होती है। पीले पड़ गए फूल पत्तों के झड़ने पर उनके भार से भूमि दब जाती है और वे वनस्पतियों के लिए उर्वरक का काम भी करते हैं। जहाँ वसन्त ऋतु संयोग का प्रतीक हे वहीं शिशिर ऋतु वियोग का। इसी प्रकार श्रावण मास में श्रावणी पर्व के अवसर पर स्वाध्याय के माध्यम से हमारी आत्मा से दुःसंस्कारों का वियोग होता है व सुःसंस्कारों के बीज पल्लवित होते हैं।

श्रावण पर्व, श्रावण मास की पूर्णिमा को मनाया

जाता, वैसे यह पर्व पूरे दो मास तक चलता है। श्रावणी पर्व का भी ऋतु चक्र से घनिष्ठ सम्बंध है। श्रावण और भाद्रपद मास में वर्षा में भारतीय विश्व विद्यालयों (घोर जंगलों में बसे गुरूकुलों) तपस्वती वानप्रस्थी और संन्यासी नगरों और ग्रामादिकों में आकर वेद प्रचकार किया करते थे, चतुर्वेद परायण सहित बड़े-बड़े यज्ञों (अग्निहोत्र, हवन) का आयोजन किया जाता था और इन यज्ञों की पूर्णहुति श्रावण-पूर्णिमा के दिन होती थी। पूरे दो महीने तक प्रातः सायं नगरों और ग्रामों के नागरिक वेद शास्त्रों का श्रवण करते थे। श्रवण के नाम से विख्यात इस मास विशेष के नामकरण के पीछे भी यही रहस्य छिपा हुआ हे। श्रावण की उत्पत्ति श्रवण से हुई है, श्रवण अर्थात् सुनना और जिस मास में वेद शास्त्रों उपनिषदों आदि की पुनीत प्रेरक वाणी को सुना जाता है वही श्रावण मास है। श्रावण पूर्णिमा के दिन ही यज्ञ की पूर्णाहुति देने से पहले सभी स्त्री पुरूष अपने यज्ञोपवीत को बदलते है नूतन यज्ञोपवीत को मंत्र सहित धारण करते हैं। वेद प्रचार सप्ताह चाहे मात्र एक प्रतीक हो, परन्तु इस अवसर पर बाह्य एवं आन्तरिक उन्नति के प्रचास किए जातें हैं। इससे इसकी ओर भी उपयोगिता बढ़ जाती है।

शिखा सहित यज्ञोपवीत धारण तथा पूरे सपताह प्रातः सायं वेद-मंत्रों पर आधारित उच्चकोटि की शिक्षाएं, उपदेश आदि तन्मयता के साथ सुनाना इस पर्व की विशेषता होने से यह पर्व त्रिक्-पर्व के रूप में मनाया जाता है।

यज्ञोपवीत की प्रतिज्ञा एक श्रेष्ठ संकल्प है। एक ऐसा संकल्प है जिससे हम अपने जीवन को आदर्श बनाते हैं और अपने परिवार, समाज तथा राष्ट्र को ऊ;ँचा उठाने के लिए कठिन से कठिन परिश्रम कर पुरूषार्थ करने का संकल्प लेते हैं। अपने जीवन में अण्डे, मांस, मछली, बाब, कबाब, बीड़ी, सिगरेट,फगुटखा, पान-मसाला इत्यादि का सेवन करने का और न ही कभी किसी को भी भेंट करने का संकल्प लेते हैं और वर्तमान में समाज सुधार में जुटी, सार्वभौमिक सिद्धान्त से परिपूर्ण संस्था आर्यसमाज के साथ निरंतर सम्पर्क में रहकर अपने जीवन में आगे बढ़ने, ऊपर उठने, रिंतर कर्मशील हरने, सूर्य-चन्द्रमा के समाज तेज धारण करने का संकल्प लेते है। यह पवित्र संकल्प यज्ञवेदी के निकट बैठकर लिया जाता है। यह विद्या और ज्ञान की ओर बढ़ का वैयक्तिक और सामूहिक अभियान है। यह हमारी अस्मिता का परिचायक पवित्रतम प्रतीक ळे। इससे यह स्पष्ट हो जाता हे कि प्रजापति परमात्मा गर्भावस्था में ही बालक/बालिका को गर्भ नाल रूपी यज्ञोपवीत से बाँधता है इसका एक सिरा गर्भस्य शिशु की नाभि से जुड़ा रहता है और दूसरा सिरा माता के गर्भाशय की भित्ति से जिसमें रसादि के द्वारा शिशु का पोषण होता रहता है प्रजापति ने ऐसी सुव्यवर्स की है जिससे बाहर के वातावरण से सुरक्षित रहकर गर्भ पूर्ण विकास हो जाने पर ही वह जन्म लेता है किन्तु यह भी ध्यान रखने योग्य तथ्य है कि माता के भोजन व आचार-विचार का प्रभाव उस पर अवश्य पड़ता है। माता निर्माता भवति- अर्थात् माता निर्माता होती है। अतः आचार्य बटुक (ब्रह्मचारी) को सम्बोधित कर रहा है कि जैसे प्रजापति ने माता के गर्भ में भी गर्भनाल द्वारा तेरे पोषण की व्यवस्था की थी, उसी भांति मैं भी उसी का प्रतीक यज्ञोपवीत तुझे पहनाकर अपने समीप धारण करता हूँ।

सदोपर्वातिना भाव्यं, बन्शिखेन च। विशिखो व्यापबतिश्चयत्करोति न तत्कृतम।।भृगु स्मृति।।

अर्थात्-यज्ञोपवीत एवं शिखाविहीन पुरूष जो कर्म करता है उसका व कर्म निष्फल सा ही है। इसीलिए शिखा और सूत्र (यज्ञोपवीत) का अटूट सम्बंध है। आत्मननु पस्थे न वृकस्य लोम मुखेश्म श्रूणि न व्याघ्रलोम। केशा म शीर्षन्यशसे श्रियै शिक्षाहिं हस्यलो मत्विषिरिन्दियाणि।। यजु. १९/९२ वां मंत्र

अर्थात् आत्मज्ञान बढ़ाने के लिए चेहरे पर खुशियाँ लाने के लिए संसार को सही मार्ग दिखाने के लिए एवं शीघ्रता से वेद ज्ञान पाने के लिए शिखा रखो। हमारे मतानुसार प्रायः ४०-४५ प्रतिशत आर्य यज्ञोपवीत तथा २५-३० प्रतिशय आर्य अपने सिर पर चोटी रखते है।

शीर्ष पर चोटी- प्रायः देखने में आता है कि वृद्धावस्था में स्मरण शक्ति कम हो जाती है तथा दूसरों की बात को सझने में अधिक शक्ति लगानी पड़ती है। इस कमजोरी को दूर करने के लिए वृद्ध पुरूषगण अपने सिर पर पगड़ी बाँधते हुए पीछे छोटा-सा पल्ला लटका लेते हैं यह भी चोटी का एक रूप माना जाता है। यह चोटी परम उन्नति की ओर चलने की प्रतीक है। वृद्ध मलिाएँ अपने सिर के बलों को इकट्ठा करके गर्दन के पीछे लटका लेती हैं इस क्रिया के द्वारा भी ज्ञान प्राप्त करने में सरलता और सहजता रहती है। सिर पर चोटी के नीचे मस्तिष्क होता है यह अस्थियों से ढ़का रहता है। इन्हीं अस्थियों के ऊपर बाल होते है चोटी के नीचे खोपड़ी एवं शरीर के वे अत्यन्त आवश्यक अंग होत हैं,फजो शरीर को सही ढ़ंग से चलतो रहते हैं। लघुमस्तिष्क

तथा सुष्षुम्ना अधिक मत्वपूर्ण है। यहाँ सर्वाधिक रूप से इस बात का ध्यान रखना है कि लघु मस्तिष्क की बुद्धि का विकास होगा। इतनी सावधानी रखने पर ही ज्ञान-वृद्धि सम्भव हो सकती है, अन्यथा नही। ज्ञन-के बिना मुक्ति नहीं होती। मुक्ति ज्ञान युक्त कर्म से होती है। ज्ञान बढ़ाने के लिए लघुमस्तिष्क के लिए लघुमस्तिष्क और सुषुम्ना के केन्द्र को सुरक्षित रखना प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य हे। बुद्धिजीवियों को शिखाधारी होना ही चाहिए। शिखा रखने वालों में देशप्रेम, धर्मप्रेम, मधुरवाणी, सहनशक्ति तथा ज्ञान की भरपूर उत्पति होती हैं इतना ही नहीं, जीवन अति सुन्दर बन जाता है, इसलिए चोटी रखने के लिए वेद में कहा गया है। अर्थात् इसे प्रेरणा का प्रतीक मानकर चोटी का शिखर की तरह उच्चकोटि का आदर्श सम्मुख रखना है इसके धारण एवं सरंक्षण से शारीरिक व मानसिक शक्तियाँ बलवती होी हैं। चोटी हमारे राष्ट्रवासियों की सांस्कृतिक तथा राष्ट्रीय पहचान है इसके अभाव में व्यक्ति का व्यक्तित्व जाना पहचाना नहीं जाता। सिर पर चोटी रखने से मनुष्य की बुद्धि का विकास होता है अर्थात् मानव मस्तिष्क ज्ञान युक्त कर्म करने के लिए प्रेरित होता है और यज्ञोपवीत के माध्य से आचार्य ब्रह्मचारी को वेदादि शास्त्रों से जोड़ता है और इस त्रिक पर्व में वेदादि ग्रन्थों के अध्ययन, स्वाध्याय अर्थात् वेदादि ग्रन्थों के पठन-पाठन व श्रवण-श्रावण का प्रचलन है। आप यहाँ प्रश्न कर सकते हैं कि ईश्वरीय वाणी, वेदादि ग्रन्थों का ही अध्ययन क्यों? अन्य मानवकृत ग्रन्थों का क्यों नही तो सुनिये जरा वेद का ज्ञान सृष्टि नियम के विरूद्ध नहीं होता, यह माता के समान है जो पेरक और पालक हे। यह मनुष्य को पवित्र करता हुआ बल, संतति, पशु, कीर्ति, धन, मेधा तथा विद्या प्रदान करता हे। यह ज्ञान सुमार्ग पर चलने का पावन ज्ञान भी देता हे। कहने का तत्पर्य यह है कि वेद संपूर्ण ज्ञान के अपार भंडार हैं। प्रत्येक मनुष्य वेद एवं वेदानुकूल मनुष्य कृत व्याख्या ग्रन्थां के स्वाध्याय से इस ज्ञान को पाकर अपने जीवन को मोक्ष मार्ग पर ले जा सकता है। ऋग्वेद में वेद को कामधेनु भी कहा गया है। वेद कामनाओं की पूर्ति करने वाली ऐसी कामधेनु गाय है जिसके सभी अंगों में दूध ही दूध है। दूध-दूध में भी अंतर होता है, किंतु यह वेदमाता ऐसा दूध देती है कि जो एक बार इसे पी लेता हे वह बारम्बार इसी को पीना चाहता हे। जो मनुष्यकृत ग्रंथ सार्वभौमिक सिद्धान्तों पर आधारित नहीं हैं चाहे वे किसी भी मत-पंथ, जाति या वर्ग से संबंद्ध रखते हों, संपूर्ण संसार का हित नहीं कर सकते। ऐसा ज्ञान जो प्रतयेक मानव के लिए कल्याणकारी है वह केवल और केवल वेदज्ञान है। इसी विशेषता के कारण इन वेदादि ग्रन्थों के अध्ययन का इस त्रिक् पर्व पर प्रचलन है।

लघुमस्तिष्क तथा सुष्षुम्ना अधिक मत्वपूर्ण है। यहाँ सर्वाधिक रूप से इस बात का ध्यान रखना है कि लघु मस्तिष्क की बुद्धि का विकास होगा। इतनी सावधानी रखने पर ही ज्ञान-वृद्धि सम्भव हो सकती है, अन्यथा नही। ज्ञन-के बिना मुक्ति नहीं होती। मुक्ति ज्ञान युक्त कर्म से होती है। ज्ञान बढ़ाने के लिए लघुमस्तिष्क के लिए लघुमस्तिष्क और सुषुम्ना के केन्द्र को सुरक्षित रखना प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य हे। बुद्धिजीवियों को शिखाधारी होना ही चाहिए। शिखा रखने वालों में देशप्रेम, धर्मप्रेम, मधुरवाणी, सहनशक्ति तथा ज्ञान की भरपूर उत्पति होती हैं इतना ही नहीं, जीवन अति सुन्दर बन जाता है, इसलिए चोटी रखने के लिए वेद में कहा गया है। अर्थात् इसे प्रेरणा का प्रतीक मानकर चोटी का शिखर की तरह उच्चकोटि का आदर्श सम्मुख रखना है इसके धारण एवं सरंक्षण से शारीरिक व मानसिक शक्तियाँ बलवती होी हैं। चोटी हमारे राष्ट्रवासियों की सांस्कृतिक तथा राष्ट्रीय पहचान है इसके अभाव में व्यक्ति का व्यक्तित्व जाना पहचाना नहीं जाता। सिर पर चोटी रखने से मनुष्य की बुद्धि का विकास होता है अर्थात् मानव मस्तिष्क ज्ञान युक्त कर्म करने के लिए प्रेरित होता है और यज्ञोपवीत के माध्य से आचार्य ब्रह्मचारी को वेदादि शास्त्रों से जोड़ता है और इस त्रिक पर्व में वेदादि ग्रन्थों के अध्ययन, स्वाध्याय अर्थात् वेदादि ग्रन्थों के पठन-पाठन व श्रवण-श्रावण का प्रचलन है। आप यहाँ प्रश्न कर सकते हैं कि ईश्वरीय वाणी, वेदादि ग्रन्थों का ही अध्ययन क्यों? अन्य मानवकृत ग्रन्थों का क्यों नही तो सुनिये जरा वेद का ज्ञान सृष्टि नियम के विरूद्ध नहीं होता, यह माता के समान है जो पेरक और पालक हे। यह मनुष्य को पवित्र करता हुआ बल, संतति, पशु, कीर्ति, धन, मेधा तथा विद्या प्रदान करता हे। यह ज्ञान सुमार्ग पर चलने का पावन ज्ञान भी देता हे। कहने का तत्पर्य यह है कि वेद संपूर्ण ज्ञान के अपार भंडार हैं। प्रत्येक मनुष्य वेद एवं वेदानुकूल मनुष्य कृत व्याख्या ग्रन्थां के स्वाध्याय से इस ज्ञान को पाकर अपने जीवन को मोक्ष मार्ग पर ले जा सकता है। ऋग्वेद में वेद को कामधेनु भी कहा गया है। वेद कामनाओं की पूर्ति करने वाली ऐसी कामधेनु गाय है जिसके सभी अंगों में दूध ही दूध है। दूध-दूध में भी अंतर होता है, किंतु यह वेदमाता ऐसा दूध देती है कि जो एक बार इसे पी लेता हे वह बारम्बार इसी को पीना चाहता हे। जो मनुष्यकृत ग्रंथ सार्वभौमिक सिद्धान्तों पर आधारित नहीं हैं चाहे वे

किसी भी मत-पंथ, जाति या वर्ग से संबंद्ध रखते हों, संपूर्ण संसार का हित नहीं कर सकते। ऐसा ज्ञान जो प्रतयेक मानव के लिए कल्याणकारी है वह केवल और केवल वेदज्ञान है। इसी विशेषता के कारण इन वेदादि ग्रन्थों के अध्ययन का इस त्रिक् पर्व पर प्रचलन है।

रक्षाबन्धन और श्रावणी

इतिहा सगवाह है कि श्रावणी पर्व के दौरान चित्तौड़ की महारानी कर्णावती ने अपनी रक्षार्थ मुगल बादशाह हिमायूं को भाइ मानकर उससे सहायता मांगी थी और भाई-बहन के स्मृतिचिन्ह के रूप में एक राखी बनाकर भेजी थी हिमायँ ने राखी की लाज रखी और भाई के नाते अपना कर्त्तव्य निभाया और बहादुरशाह पर आक्रमण करके अपनी बहन कर्णावती की सहायता की और चितैंड़ को बचाया। तब से यह प्र चल पड़ी और अब तो यह फैशन बन गया है कि बहनें अपने भाइयों तथा पिता की कलाई पर राखी बांधती हे ओर गिफ्ट प्राप्त करती हैं। रक्षा बन्धन का चलन एक स्वस्थ परम्परा बन गई है जिससे एक ओर भाई-बहन का विश्वास और प्रेम सुदृढ़ होता है और दूसरी ओर लड़कियाँ/महिलाएं गैर पुरूषों को अपना भाई बनाकर समाज में पनपती कुरीतियों को समापत करने में सहायता कर रही है रक्षा बन्धन के त्यौहार के कारण विभिन्न सम्प्रदायों के बीज में भाई-चारे का वातावरण बनता हे ओर आपसी विश्वास का रिश्ता पुख्ता होता है। जिस प्रकार आर्यों में पहले से चले आ रहे विजयदशमी के पर्व में रावण पर राम की विजय का उत्सव और अधिक महत्त्व बढ़ा देता है और जिस प्रकार पहले से चले आ रहे दीपावली के पर्व पर ऋषि दयानन्द के निर्वाण से और अधिक महत्त्व बढ़ जाता है उसी प्रकार उपरोक्त ऐतिहासिक वीरों द्वारा बहनों की रक्षा का व्रत लेाना और उसे निाना इस पर्व के महत्त्व को और अधिक बढ़ा देता है।

उपरोक्त सभी तथ्यों को ध्यान में रखकर श्रावणी पर्व के अवसर पर देश-विदेश की सभी आर्यसमाजों में हर्षोल्लास से वैदिक प्रवचनों के कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं आप भी वहाँ जायें और अपने समय का सदुपयोग कर जीवन को सफल बनाए। इश्वर आप के घरों में सुख, समृद्धि, आनन्द का अथाह संचार करे इसी कामना के साथ लेखनी को यही विराम देता हूँ।

पता- सैनी मोहल्ला, ग्राम-शाहबाद,
मोहम्बद पुर, नई दिल्ली-११००६१
मो. : ९८७१६४४१९५

.....***.....

वेदामृतम्

किं न इन्द्र जिघांससि, भ्रातरी मरुतस्तव।
तेभिः कल्पस्व साधुया, मा नः समरणे वधीः।।

हे इन्द्र! हे परमात्मन्! तुम ऐश्वर्यशाली हो, वीर हो, ब्रह्माण्ड के राजा हो। इसमें सन्हेद नहीं कि तुम बहुत बड़े हो, महानों के महान् हो, किन्तु तुम हमारे ऊपर प्रहार पर प्रहार क्यों किये जा रहे हो? हम एक प्रहार से संभल कर उठ भी नहीं पाते कि तुम दूसरा प्रहार कर देते हो। हमारी पीठ पर कोड़े क्यों बरसाते जा रहे हो? देखो, तुम्हारे दण्ड प्रहारों से हमारा शरीर क्षत विक्षत हो गया है, हमारी इन्द्रियाँ बर्बर हो गई हैं, हमारा आत्मा घावों से बेचैन हो तड़प रहा है। कभी तुम अपने जवर, अतिसार, कुष्ठ, विशूचिका, राजयक्ष्मा आदि शस्त्रों से हम पर आक्रमण करते हो, कभी हमें दुभक्ष, भूकम्प, अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि से संत्रस्त करते हो, कभी हमें भीषण दुर्घअनाओं का विचार बनाते हो, कभी हमें काम, क्रोध आदि आन्तिक शत्रुओं की मार से व्याकुल करते हो। हम नन्हें से जीव तुमळारी लाई हुई इन विपदाओं को भला कैसे सह सकेंगे?

हे भग्वन्! हम पर दया करो। हम तुम्हारे भाई हैं, तुम्हारे सबन्धु हैं, तुम्हारे सखा हैं। तुम औ हम एक ही जगद् वृक्ष पर बैठे हुए हैं अन्तर इतना ही है कि हम इन वृक्ष के फलों को भोग रहे हैं, और तुम भोग से स्वतन्त्र होकर साक्षी मात्र बने हुए हो तुम सत्, चित्, अनादि और अनन्त हो, तो हम भी सत्, चित्, अनादि और अनन्त हैं। तुम आनन्दस्वरूप हो, हम आनन्दमय बनने की अभिलाषा रखते हैं। भाई होने के नाते हम तुम्हारी सहायता के पात्र है। तुम हमरे साथ साधुता का सहानुभूति का, सहृदयता का व्यवहार करो। संसार के इस विकट संग्राम में तुम हमारा वध करने पर उतारु क्यों हो रहे हो? यह सत्य है कि जो हम भोगते हैं, वह मारे अपने कर्मो का ही फल है, पर तुम्हारी दया से क्या संभव नहीं है! तुम चाहो तो हमारे जीवन की दिशा ही बदल सकते हो, हमें निर्बुद्धि बना सकते हो, असत्कर्मा से सत्कर्मा बना सकते हो, असुर से देवता बना सकते हो। अतः कृपा करो, बड़े भ्राता होने के नाते छोटे भ्राताओं को अपनी शरण में ले लो, हमारा उद्धार कर दो।

।। ओ३म्।।

विदेश से वेद प्रचारक मा. ज्ञानेश्वर्य जी का ज्ञानवर्धक पत्र

समादरणीय श्रीयुत,
सादर नमस्ते।

ईश्वर कृपयात्र कुशलं तत्रापि भवतु।

❊ २८ अक्टुबर से १२ नवम्बर २०१४ तक सिंगापुर, बैंकाक, मलयेशिया देशों की यात्रा की। यद्यपि २ वर्ष पूर्व मैंने इन देशों की यात्रा की थी, किन्तु सा.आ.प्र. सभा के प्रधान मान्य सुरेशचन्द्रजी के विशेष आग्रह पर तथा अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन के आयोजन के कारण पुनः यात्रा का कार्यक्रम बना लिया। सम्मेलनों में ३०० से अधिक प्रतिनिधियों ने भाग लिया, जिसमें U.S., U.K., Canada, Australia, Mauritius आदि अनेक देशों के आर्य सज्जन भी सम्मिलित हुवे। सिंगापुर आर्य समाज की स्थापना को १०० वर्ष हो गये तथा बैंकाक आर्य समाज को ७५ वर्ष। हजारों किलोमीटर दूर देशों में, जब वैदिक आर्य परम्परा वाले व्यक्तियों, परिवारों, समाजों को प्रत्यक्ष देखते हैं तो हृदय में आनन्दातिरेक की अनुभूति होती है। कुछ छोटी-छोटी अव्यवस्थाओं को छोड़कर सम्मेलन सफल रहा।

❊ पाश्चात्य और पौर्व्य विकसित देशों की बाल चकाचौंध करने वाली भौतिक प्रगति को देखकर अधिकांश व्यक्ति प्रभावित होते हैं और वैसा ही बनने का विचार करते हैं, प्रयास भी करते हैं किन्तु सूक्ष्म दार्शनिक दृष्टि न होने के कारण वे आन्तरिक स्थिति का अवलोकन नहीं कर पाते हैं और भ्रान्त धारणा बन जाती है कि ये सुखी हैं, शान्त हैं, सन्तुष्ट हैं। किन्तु वास्तव में ऐसा होता नहीं हैं। बिना आत्मा-परमात्मा को जाने, सच्चे वैदिक ज्ञान के अनुरूप अपने जीवन को चलाये बिना मनुष्य कितनी ही धन सम्पत्ति प्राप्त क्यों न करले, पूर्ण सुखी नहीं हो सकता। दुःखों से घिरा रहता है।

❊ वैदिक ऋषियों ने ईश्वर का ध्यान, आर्ष ग्रन्थों का स्वाध्याय, सत्पुरूषों का संग, पुनर्जन्म, कर्मफल, समाधि, वैराग्य, व्रत, तप, संयम आदि आध्यात्मिक विषयों तथा सिद्धान्तों को सांपराय शब्द से इंगित किया है, जो मनुष्य इन विषयों का ज्ञान और तत्सम्बन्धी आचरण नहीं करते हैं वे मूढ संज्ञक मनुष्य होते हैं, ऐसे मनुष्यों की मान्यता यह होती है कि "This is the first and last life, There was no life before this life and there will be no life after this life." यही जीवन है, न इससे पूर्व जन्म था, न मरने के पश्चात् होगा। अपने इस चार्वाक्/विरोचन/नास्तिक वादी सिद्धान्त के कारण अपनी बुद्धि, शक्ति, साधन, समय, चातुर्य, श्रम का पूर्णरूप से इसी जीवन को, अधिकाधिक सामर्थ्यवान बनाकर अधिकाधिक भोगों को भोगने का प्रयास करते हैं और इस एकांगी क्षेत्र में वे सफल हो जाते हैं। किन्तु इस जीवन के बाद सर्वथा विनाश है, अन्धेरा ही अंधेरा है, दुःख ही दुःख है।

❊ जब किसी व्यक्ति-समाज-राष्ट्र का जीवन का लक्ष्य ही भिन्न होगा, तो दिशा भी भिन्न होगी, मार्ग भी भिन्न होगा, साधन भी भिन्न होंगे, और शैली भी। बुद्धिमान व्यक्ति अन्य व्यक्ति के रूप, रंग, आकृति, बल, बुद्धि, सामर्थ्य, पद, प्रतिष्ठा, भौतिक सम्पत्ति, ऐश्वर्य आदि को देखकर यह नहीं मान लेता कि यह पूर्ण सुखी है, शान्त है। पूर्ण सुखी होने की कुछ कसौटियां हमारे ऋषियों ने निर्धारित की हैं, यदि व्यक्ति उन कसौटियों पर खरा उतरता है, तो वह सुखी हो सकता है, यदि उन पर व्यक्ति उत्तीर्ण नहीं होता है, तो वह निश्चित् रूप से अशान्त, चिंतित भयभीत, दुःखी रहता है, चाहे बाह्य लक्षणों से दिखाई न दे।

❊ प्रेम मार्ग के पथिक, चाहे पश्चिम में हों या पूर्व में या अपने देश में, ये बिना श्रेयमार्ग के सिद्धान्त, शैली को अपनाये, पूर्ण सुखी हो ही नहीं सकते हैं, चाहे कितनी ही भौतिक उन्नति क्यों न कर लेवें। सच्चे ईश्वर तथा ईश्वराज्ञा को न मानने वाला व्यक्ति, असामान्य/प्रतिकूल परिस्थितियों में अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए अन्य व्यक्ति/परिवार/समाज/राष्ट्र का अहित करने को समुद्यत हो जाता है। जिन मनुष्यों को, अन्तःकरण में ईश्वर के अस्तित्व का बोध नहीं होता है, अथवा जो, शब्द प्रमाण वा अनुमान प्रमाण से ईश्वर को स्वीकारते तो हैं, किन्तु व्यवहार में ईश्वराज्ञा के विरूद्ध आचरण करते हैं, उनकी भी आत्मा में परमात्मा का प्रकाश विलुप्त हो जाता है। ऐसे व्यक्ति बुरे कामों को करते समय, ईश्वर की ओर से भय, शंका तथा लज्जा-स्वरूप संकेतों का ग्रहण नहीं कर पातें हैं और वे स्वच्छंद होकर, निर्लज्ज होकर, पाप-अपराधों को करते रहते हैं।

* हे परमेश्वर ! हम अपने से निम्न स्तर के मनुष्यों को देखकर खिन्न होते हैं, घृणा-ग्लानी करते हैं, किन्तु इससे क्या लाभ? जब आत्मनिरीक्षण करते हैं तो स्वयं में भी अनेक अवगुण, दिखाई देते हैं। अवगुण न हों या न्यून हों, फिर भी अन्यों के दोषों को दूर करने का साहस, उत्साह, पराक्रम हमारे में नहीं है। ये साहस, बल, पराक्रम आदि गुण तब तक पूर्ण रूप से नहीं उभरेंगे, जब तक हम स्वयं दोष रहित नहीं होंगे। इसलिए अब तो हमारी आपसे यही प्रार्थना है कि सर्वप्रथम हमारे समस्त दुर्गुणों को विनष्ट कर दो और समस्त भद्र गुणों से हमें परिपूर्ण कर दो। तब आपके विशेष ज्ञान-बल-सामर्थ्य से युक्त होकर न केवल अपने आर्यावर्त्त की, अपितु सम्पूर्ण विश्व की अवैदिक परम्पराओं को समाप्त करके, उनके स्थान पर विशुद्ध वैदिक शिक्षा, संस्कृति, सभ्यता, खान पान, आचार विचार वाली गौरवमयी-अस्मिता की स्थापना करने में समर्थ हो जायेंगे और उपका कृण्वन्तो विश्व मार्यम् का आदेश पूरा कर देंगे, सी आशा विश्वास के साथा - ज्ञानेश्वर्यः

चैत्र मास (मीन)

के लिए

प्राणदायक व्यायाम

सिर को नीरोगता और स्वास्थ्य देनेवाला

एड़ियाँ मिलाकर, पंजों को एड़ियों से ३०-३५ अंश के कोण पर रखकर सीधे खड़े होइये। खड़े होकर अपनी दोनों भुजाओं को दाएँ-बाएँ पूरा खोलकर फैला दीजिये, ऐसी सधी फैलाइये कि ये कंधों के साथ समतल फैली हों। हथेली ऊपर की तरफ रहे। छाती ज़रा-सी आगे बढ़ी हुई हो। अब हाथों की मुट्ठी इतनी ज़ोर से कसिये कि भुजाओं की सब मांसपेशियां (चीलश्रशी) कस जाएँ और साथ ही सारे शरीर की मांसपेशियाँ तन जाएँ। इस अवस्था में भुजाओं को धीरे-धीरे ऊपर उठाते जाइये जब तक कि ऊपर दोनों मुट्ठियाँ मिल न जाएँ। जब से भुजाएँ ऊपर उठाई जा रही हों तब तक दीर्घश्वास अन्दर भरिये। जिस समय हाथों को नीचे ला रहे हों तब श्वास को धीरे-धीरे बाहर निकालिये। यह कर चुकने पर हाथों की मुट्ठी और मांसपेशियों को ढीला कर दीजिये और पूर्वस्थिति में हो जाइये। इस प्रकार व्यायाम ८-१० मिनट तक बार-बार कीजिये। इस प्राणायाम के समय मन को सिर में लगाइये। मन द्वारा यह चित्रित कीजिये कि प्राणवायु मेरे मस्तिष्क में, मेरे सिर में, मेरे एक-एक घटक (Cell) में पहुँचकर उसे अनुप्राणित कर रहा है। ऐसा ध्यान करने से सिर की तरफ रुधिर-संचरण (Circulation) बढ़ेगा और वास्तव में सिर में प्राण पहुँचने में सहायता करेगा।

ध्यान-यह प्राणायाम मुझे लाभ पहुँचा रहा है। रुधिर मेरे सिर में, मेरे मस्तिष्क में भली प्रकार संचरण कर रहा है। यहाँ के सब दूषित मल निकल रहे हैं और प्राणशक्ति निर्बाध-बे-रोकटोक-ऊपर पहुँच रही है। मेरा शीर्ष निर्मल है और उसका एक-एक घटक स्वास्थ्य से जीवनपूर्ण हुआ है।

सिर के लिए गौणतया आषाढ़, आश्विन और पौष के प्राणदायक व्यायाम भी लाभ पहुँचाएँगे।

अमरावती नगर में वेदप्रचार का धमाका

अमरावती : सारे आर्य जगत में सक्रीय और संपन्न आर्यसमाजों में श्रावणी-उपाकर्म-रक्षाबंधन-हैदराबाद बलिदान दिवस श्रीकृष्ण जन्माष्टमी पर्व धूमधाम से मनाएँ जाते है। घर-घर हवन-हर घर हवन इस योजना के तहत अमरावती में आर्य समाज अमरावती के मंत्री श्री. संतोषजी नत्थानी और आर्य प्रतिनिधि सभा मध्यप्रदेश व विदर्भ के प्रधान श्री. सत्यवीरजी शास्त्री ने प्रयास किया। जनता का अच्छा प्रतिसाद मिला। पांच प्रोफेसर, तीन इंजिनिअर, प्रतिष्ठि, धनवान, ऐसे इक्यावन परिवारों में हवनोपरान्त वेदप्रवचन, भजन, कीर्तन के प्रभावशाली कार्यक्रम संपन्न हुए है। इन कार्यक्रमों का जनता पर सकारात्मक गहरा प्रभाव पड़ा है।

– पं. सत्यवीर शास्त्री

ओ३म् क्रतो स्मर

विद्यासागर शास्त्री गणगणे
प्लॉट नं. ४०, सुराज कॉलनी, अमरावती.

हे क्रतो ! कर्मशील जीवत्मन्। अपनी जन्ममृत्यु से मुक्ति के लिए ओ३म् का मन वचन कर्म से स्मरण कर।

संसारेऽपि सतीन्द्रजालमपरं यद्यस्ति-तेनाऽपि किम्?

यह भर्तुहरि का कथन है।

मनुष्य के लिए संसार से अधिक बड़ा और कोई भी इन्द्रजाल=मायाजाल नहीं है। मनुष्य इस संसार के मायाजाल से छुटकारा पाने का जितना भी प्रयत्न करता है अर्थात् दिन प्रतिदिन की समस्याओं का सुलझाने का प्रयत्न करता है उतना ही अधिक उसमें उलझता जाता है यह जानते हुए भी कि यह संसार एक ऐसा बन्धन है जिसमें जीवात्मा इसके बन्धन में बंध जाता है। उसे यह संसार बन्धन में बन्धे हुए जीवात्मा को उसकी इच्छा से मुक्त नहीं करता, जब तक यह जीव अपनी मुक्ति के लिए उचित और अनुकुल दिशामें ठीक ठीक प्रयत्न नहीं करता।

यह संसार अपने स्वाभाविक नियम से सभी जीवों को कर्म बन्धन में बांधकर भोगों के अधीन कर लेता है।

अविवेकी जीव इन सांसारिक भोगों को ही सच्चा सुख मान बैठता है परन्तु संसार में सभी जीव अविवेकी नहीं होते। हाँ, अविवेकी जीव संख्या की च्हिट से अधिक होते हैं।

इस अवस्था में प्रश्न उठता है कि विवेक - किसे कहते हैं? या क्या है ?

उत्तर - सत्याऽसत्यं विविच्य यत् सत्यं-निश्चीयते सःविवेकः। विवेकः-विद्यते यस्मिन् सो विवेकी इति अर्थात्

सत्य और असत्य का अच्छी प्रकार से विवेचन (गहन सोच विचार) करके जिस सत्य=यथार्थ ज्ञान का निश्चय किया जाता है उसे विवेक कहते है। यह विवेक जिस पुरूष में होता है वह विवेकी कहलाता है।

अब प्रश्न उठता है कि सत्य-असत्य का किस विषय में ज्ञान होना विवेक कहलाता है। इस प्रश्न के उत्तर पर महा मनीषी ऋषिमुनियों ने विचार विमर्श किया है -

सदेव सौम्य ! इदम् अग्र आसीत्।
छन्दोग्य उपनिषद।
असद्वा इदमग्र आसीत्।
तैत्तिरीय उपनिषद्।

उपर्युक्त विषय पर सत् और असत् पर चिार करना तथा सत् क्या है और असत् क्या है ? इस का विचार करके निर्णय करना, इस संसार की स्थिति सत् है; या असत् है इस विषयक ज्ञान प्राप्त करना विवेक कहलाता है।

सत् (सत्य) असत् (असत्य) का निर्णय देते हुए कुछ विद्वानों का मत है..

श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थ को टिभिः।
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मौ व नारः।।

इस श्लोक में ब्रह्म को सत्य और जगत्ः संसार को मिथ्या=असत्य बताया गया है।

इस मत के अनुसार जगत् को असत्य मानकर त्याग दिया जाएं तो क्या जीव ब्रह्मत्व को प्राप्त कर लेगा? अथवा जीव ब्रह्म बन जायेगा? नहीं क्यों कि जीव कभी भी ब्रह्म न था न है न बन सकता है।

क्यों कि जगत् वह साधन है जो जीव को ब्रह्म तक पहुँचाने में सहायक बनता है।

यह शरीर जिस पर जीव गर्व करता है जगत् की देन है।

पांच भौतिको देहः

यह शरीर प्रकृति के तीन तत्त्व - सांख्य दर्शन में स्पष्ट निर्देश दिया है

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः
प्रकृतेर्महान् महतोऽहंकारःअहंकारात्
पंचतन्मोत्रणि-उभयमिन्द्रियं पंचतन्मात्रेम्यः
स्थलिभूतानि, पुरूष इति पंचविंशतिर्गणः।।
प्रथम अध्याय सूत्र = ६१

अर्थात् सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण इन तीनों गुणों की समान अवस्था (साम्या अवस्था) प्रकृति होती है।

१) प्रकाश २) गति ३) स्थिति रूप प्रकृति की शक्तियाँ है। इन तीन शक्तिरूपों की साम्यावस्था अर्थात् निश्चेष्टा-अवस्था प्रकृति कही जाती है।

इसी प्रकृति से महत् तत्त्व उत्पन्न हेाता है। अहत्तत्त्व से अहंकार उत्पन्न होता है। यह प्रकृति का दूसरा विकार होता है।अहंकार से पंचतन्मात्राएं उत्पन्न होती है। बाह्य जगत् में पंचतन्मात्रा अर्थात् पंचसूक्ष्म भूत उत्पन्न होते है। - आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी इनके सूक्ष्म रूप उत्पन्न होते है यह प्रकृतिका तीसरा विकार होता है।

इन पांचों को ही सूक्ष्म भूत कहते है।

पांच सूक्ष्म भूतों से (आकाश, वायु अग्नि, जल, पृथिनी) महाभूत पैदा होते है।

पंचसूक्ष्म भूतों से=उभयम् इन्द्रियम् अर्थात् शरीर में ज्ञानार्जन कर्म करने हेतु पंच ज्ञानेन्द्रिये उत्पन्न होती है (उभय का अर्थ है दो प्रकार की इन्द्रियां) और पंच कर्मेन्द्रियां उत्पन्न होती है। (तन्मात्रेम्यः) तन्मात्राओं से अर्थात् सूक्ष्मभूतों से स्थूल भूत अर्थात् पृवी, जल, अग्नि, वायु व आकाश उत्पन्न होते है। व्यक्त स्वरूप में आते है। (पुरूषः) चेतन सत्ता=आत्मा उनसे भिन्न है।

इस प्रकार (पंचविंशतिः गण) पच्चीस पदार्थों का गण जानना-समझना चाहिए और यही विवेचनीय है। विवेक में उपर्युक्त विवेचन अति आवश्यक है।

उपर्युक्त कथन निम्नलिखित वेदमन्त्रों की व्याख्या है-

१) ओ३म् ईशावास्यमिदं सर्वंयत् किंच जगत्यां जगत्
यजुर्वेद अध्याय ४० मन्त्र-१

२) वेदाहमेतं पुरूषं महान्तम् आदित्यवर्णंतमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वा ऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतजेऽयनाय।।

अर्थात् इस महान् आदित्यवर्ण वर्णवाले तमस= अन्धकार से परे परमपुरूष ईश्वर को विवेक ख्याति द्वारा जानने के पश्चात् ही अतिमृत्यु अर्थात् जन्म मृत्यु से छुटकारा = मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। (नान्यःपन्थाःविद्यतेऽयनाय) विवेक ख्याति के बिना परमपुरूष परमात्मा कोजाने बिना मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती (नान्यः पन्थाः विद्यतेऽयनाय) जन्ममृत्यु के बन्धन से मुक्त होने का अन्यपन्थाः=अन्य मार्ग ही नहीं है।

शरीर की उपादेयता

जीव को मोक्ष प्राप्त करने के लिए शरीर की अत्यन्त आवश्यकता होती है।

इसी बात को कठोपनिषद् वल्ली-३। काण्ड-३ में समझाया है

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।।

अर्थात् आत्मा को रथवान समझो, शरीर को रथ समझो, बुद्धि को सारथि=रथ-चलाने वाला समझो, मन को इन्द्रिय रूपी घोडों की लगाम समझो।

इसी विषय को समझाने के लिए अगली वल्ली-श्लोक में और अधिक वर्णन करके समझाया है-

इन्द्रियाणि ह्यानाहुःविषयान् तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोला इत्याहु र्मनीषिणः।।

इन्द्रियों को हय अर्थात् घोडें बताया है।

वे इन्द्रिय रूपो घोडे विषयों में विचरण करते हैं।

मनीषीजन आत्मा ज्ञानेन्द्रियां कर्मेन्द्रियां व मन इनसे युक्त आत्मा को भोक्ता कहते हैं।

न्याय दर्शन में महर्षि गौतम ने जोवात्मा की परिभाषा निम्न प्रकार से दी है -

इच्छाद्वेष प्रयत्न सुखदुःख ज्ञानानि-आत्मनो लिङ्गम्। अध्याय-१, सूत्र-१०

वैशेषिक दर्शन में जीवात्मा की परिभाषा निम्न प्रकार से दी है।

प्राणाऽयान निमेषोन्मेषजीवन मनोगतीन्द्रियान्तार्विकाराः सुखदुःख प्रयत्नाश्चात्मनो लिङ्गानि।

अर्थात : १) बाहर से वायु का शरीर के अन्दर लाना प्राण कहा जाता है।

२) शरीर के अन्दर से वायु को बाहर निकालना अपान कहा जाता है।

३) प्राण धारण और आँखों के पलकों का झपकाना और खोलना = निमेषोन्मेष जीवन कहा जाता है।

४) मनन विचार और ज्ञान मन का कार्य है। और बिना बाधा के जहाँ वहाँ गमन करना मनोगति कही जाती है।

५) इन्द्रियों का विषयों में प्रवृत्त होना और विषयों को ग्रहण करना इन्द्रिय कहा जाता है।

६) भूख, प्या, ज्वर पीड़ा आदि विकास अन्तविकार कहे जाते है।

७) सुखम=सु अर्थात् अच्छा लगना ख अर्थात् इन्द्रियों को उसे सुख कहते है।

८) दुःखम्=दुः अर्थात् इन्द्रियों को अच्छा न लगना उसे दुःख कहते है।

९) इच्छा = अप्राप्त को प्राप्त करने के लिए बार बार ललचाना।

१०) द्वेष : दुःखादि से अप्रीति करना और अनिच्छित के प्रति द्वेष भावना रखना।

११) प्रयत्नः = पुरूषार्थ अर्थात् आत्मा और परमात्मा विषयक विवेक ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना।

१२) ज्ञानम् = ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रयास करना और उसे अर्जित करना ताकि जीवन आनन्दमय हो। इस प्रकार आत्मा (जीवात्मा) की शक्ति को जान कर अपने अन्दर के सद्गुणों का विकास किया जाएं।

उपर्युक्त आत्मा की परिभाषा जो सत्शास्त्रों से सम्मत है को समझने के पश्चात् हमें लक्ष्य ओर बढने लिए ऐसा उपाय चाहिए जो वेद के अनुकूल हो।

वेद भगवान् हमें जीवन जीने का उपदेश देते है -

ओ३म् ईशावास्यमिदं सर्वं
यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन युञ्जी थाः
मा गृधः कस्यस्विद् धनम्।।

अर्थात - हे मनुष्य। इस जगती में जो कुछ धन सम्पत्ति (प्रकृति सेलेकर पृथिवी तक) जगत् अर्थात् चर-अचर प्राणिमात्र सम्पूर्ण ऐश्वर्य है वह सब सर्वशक्तिमान् परमात्मा से व्याप्त है अर्थात् यह सब उसीका है। इसलिए परमात्मा द्वारा आच्छादित और प्राणिमात्र के जीवन निर्वाह के लिए प्रदत्त लौकिक धन का प्राणिमात्र को त्याग भाव से उपभोग करना चाहिए। अन्याय के आचरण से किसी का भी धन ग्रहण नहीं करना चाहिए, लोभ नही करना चाहिए क्योंकि यह धन परमामा के सिवाय किसी का नहीं है। आज धन के हम स्वामी है तो कल (हमारे मरणोपरान्त) हमारे पुत्रों या किसी अन्य का हो जायेगा। धन सम्पत्ति स्थिर नहीं होती। अतः अभी से ही परमात्मा प्रदत्त सम्पत्ति का त्याग भाव से उपभोग करना चाहिए।

इसीलिए परमात्मा ने हम मनुष्यों के लिए दिशा निर्देश किया है -

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्तिव न कर्मलिप्यते नरे।।

अर्थात् - इस संसार में कर्म करते हुए ही सौ वर्षों तक जीबित रहने की इच्छा करनी चाहिए। ऐसा करने पर तुझ में कर्म लिप्त नहीं होंगे अर्थात् तू कर्मों के बन्धन में नही पडेगा।

कर्म करने के अतिरिक्त तेरे पास और कोई मार्ग ही नहीं है। इसी मन्त्र की व्याख्या करते है । भगवान कृष्ण गीता में अर्जुन को समझाते हुए उपदेश देते है - कर्मण्येवा धिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतु र्भूःमा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।। ७/२/४७।।
अर्थ - हे अर्जुन ! तेरा अधिकार केवल कर्म करने पर है। कर्मफलों पर तेरा अधिकार नहीं है। तू कर्मफल का हेतु=कारण मत बन और ध्यान रख कर्महीन (कर्म न करने में संग=रुचि न रखता।

संसार में प्रत्येक प्राणि कर्मशील है। क्योंकि अपने जीवनयापन के लिए कर्म करना अति आवश्यक है। परमात्मा कर्म फल दाता है। इसी लिए चेतावनी दी है - कर्म के फल पर तू अपना अधिकार मत समझ, निकम्मा मत बन।

परमात्मा ने यजर्वेद के चालीसवे अध्याय के पन्द्रह वे मन्त्र में मनुष्यों को चेतावनी दी है -

ओम् वायुरनिलममृतमथेदं,
भस्मान्तं शरीरम्।
ओम् क्रतो स्मर क्लिबे स्मर
कृतं स्मर।।

अर्थात् - इस मन्त्र में आत्मा को वायु, अनिल और अमृत कहा है।

१) वायु - जिस प्रकार वायु सुंगन्ध और दुर्गन्ध को लेकर बहती है - एक स्थान से दूसरे स्थानों की तरफ गमन करती है। उसीप्रकार यह जीवात्मा अपने सत्कर्म और दुष्कर्मों को लेकर अपने इन दोनों प्रकार के कर्मों का फल भोगने के लिए अन्य योनियों में गमन करता है।

२) अनिलम् = अर्थात् यह जीवात्मा पृथिवी का अंश नहीं है अन्=नहीं है, श्ला=पृथिवी अतः जीवात्मा अनिल है।

३) अमृत = अर्थात् मृत नहीं (मरण धर्मा नहीं है)
यह जीवात्मा कभी मरता नहीं
उपर्युक्त मन्त्र की व्याख्या करते हुए भगवत्गीता में कहा हैं

१) अन्तवत इमे देहाः नित्यस्योक्ताः देहितः।
अविनाशिनोऽप्रमेयस्यतस्माद् युध्य स्व भारत।।

अर्थात् -(अविनाशिनः) नष्ट न होने वाले (अप्रमेयस्य) इन्द्रियों के ज्ञान से दूर (नित्यस्य) नित्य (शरीरिणः) देहधारी के (इमे देहाः) ये शरीर (अन्तवन्तः) विनाशी = नष्ट होनेवाले है = शरीर का नाश अवश्य होता है।

२) न जायते म्रियते वा कचाचित्।
नायं भूत्वा भविता वा भूयः।।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराण्यः।
न हन्यते हन्य माने शरीरे ।।

अर्थ - यह जीवात्मा न कभी उत्पन्न होता है और न मरता है और न होकर फिर होगा तात्पर्य यह है कि - बार बार उत्पन्न होना और मरना आत्मा का धर्म नहीं है। जन्म और मरण केवल शरीर के साथ संयोग और वियोग मात्र है।

यह जीवात्मा अजन्मा सदा रहने वाला स्थिर और अनादि है। शरीर के मारे जाने पर नहीं मरता।

३) वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णानि नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णानि-

अन्यानिं संयाति नवानि देही।।

अर्थात् - जैसे मनुष्य पुराने कपडों को छोडकर दूसरे नये कपडे पहनता है वैसे ही शरीरधारी पुराने शरीरों को छोडकर और नये शरीरों में प्रवेश करता है।

४) नै नं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्ति-आपः न शोषयति मारुतः।।

अर्थात् - इस आत्मा को शस्त्र काट नहीं सकते, अग्नि इसे जला नहीं सकती और आपः=जल इसे गला नहीं सकता न ही वायु इस आत्मा को सुखा सकता है।

उपर्युक्त क्षमताओंवाला होकर भ यह जीवात्मा स्वयं जन्म-मृत्यु के चक्र से छुटकारा नहीं पा सकता क्यों कि जीवात्मा जन्म=शरीर से संयुक्त होता तब उसका पूर्व ज्ञान लुप्त हो जाता - शशरीर एक ऐसी दीवार होती है जिसके कारण पूर्व जन्म का सब कुछ विस्मृत हो जाता है। उसे नये सिरे से तप = विद्या - सद्विद्या = आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए या जन्म मृत्यु के बन्धन से मुक्त होने के लिए अत्यन्त पुरुषार्थ करना अति आवश्यक है -

जैसा कि सांख्य दर्शन में बताया है -

अथ त्रिविद्यदुःखात्यन्त निवृत्तिः
अत्यन्त पुरुषार्थः। प्रथम अध्याय सूत्र-१

१) त्रिविद्य दुःख = आध्यात्मिक, आधि भौतिक, और आद्यिदैविक।

१) आध्यात्मिक दुःख :

हमारा आत्मा अनन्त योनियों में अपने कर्मों का फल भोगकर मनुष्य योनि में आया है। हमारे आत्मा पर अनन्त योनियों में रहने से उस उस योनि के संस्कार ही आध्यात्मिक दुःख होते है। उन संस्कार को धोने के लिए अर्थात् आत्मा को निर्मल बनाने के लिए अन्तंन्त पुरूषार्थ की आवश्यकता होती है।

२) आधि भौतिक दुःख :

ऐसे प्राणि जो हमारे जीवन शत्रु होते जैसे जंगली प्राणियों से और विद्यमीं जनों से - भूत अर्थात् जो इस संसार में उद्भूत = उत्पन्न होकर अन्यों की जीवनलीला समाप्त कर देते है।

३) आद्यिदैविक :

दैवी विपत्तियां - भूकम्प झंझावात, अतिवृष्टि, बाढ, वृष्टि न होने स सूखा पड़ना अकाल आदि। इन तीनों दुःखों में से आद्यिदैविक व आद्यिभौतिक ये दो दुःख जन्म के पश्चात के आकस्मिक घटना के समान है इन से प्रयत्न करने से बचा जा सकता है।

किन्तु आध्यात्मिक दुःख पूर्वजन्मों में किए गये पाप दुष्कर्म आदि से सम्बन्ध रखते है।

मनुष्य जन्म में उन्हीं पूर्व जन्मों के कुसंस्कारों को (पाप दुष्कर्म जनित) को आत्मा को चिमड़े हुए कुसंस्कारों को सु करना मनुष्य जीवन का उद्देश्य होना चाहिए ताकि निष्कलंक जीवात्मा मोक्ष की ओर अग्रसर हो सके।

.....***.....

विश्व की प्रथम आर्य समाज–काकड़वाडी (मुंम्बई)

द्वारा सम्मान

आर्य प्रतिनिधि सभा, मध्यप्रदेश व विदर्भ-नागपुर द्वारा संचालित प्राचिन गुरुकुल होशंगाबाद के हनुमान आचार्य नन्दकिशोर जो आर्य समाज के हनुमान के नाम से प्रसिद्ध है, को महर्षि दयानंद द्वारा स्थापित प्रथम आर्य समाज मुम्बई काकड़वाडी मे शाल, श्रीफल व चाँदी की थाली के २० हजार रूपये देकर सम्मनित किया गया।

आर्य प्रतिनिधी सभा मध्येप्रदेश व विदर्भ के प्रधान पं. सत्यवीरजी शास्त्री व सभा मंत्री अशोक यादव तथा समस्त पदाधिकारीयों कि तरफ से उन्हे बहुत बहुत बधाई देते हुये विश्वास व्यक्त तरफ से उन्हें बहुत बहुत बधाई देते कि विश्वास व्यक्त तरफ से उन्हे बहुत बहुत बधाई देते किये विश्वास व्यक्त किया गया कि वे गुरुकुल के वैभवशाली इतिहास कि रक्षा के लिये न्याय प्रक्रिया के साथ तन, मन, धन से प्रयास करेगे।

– पं. देवदत्त शर्मा

सद्गुरवे नमः

काल पर विजय

– निष्ठादास

पिछले अंक का शेष....

मनुष को अपनी मूलभुत स्वतंत्रता की अनुभुति करले के लिए अतीत और भविष्य के बीच की इसी क्षण की तलाश करनी होगी और इसमें ठहरने की साधना करनी होगी। समाधि, स्वरुपस्थिति, शुद्ध चैतन्य स्थिति इसी क्षण में होती है। इस क्षण की जो चेतना शक्ति होती है, सुरत या लक्ष्य होता है, इसी को विशुद्ध मन कहते हैं। यह मन जहाँ लग जाता है उसी को लगाव सा स्नेह कहते हैं। यह अपने में रहता है तो हम अतीत और भविष्य से मुक्त रहते हैं। जीवन के आवश्यक कार्यों को करते हुए भी हम उनके आकर्षक से मुक्त रहते हैं। हमें इसी क्षण का अध्ययन करना है। इसी स्थिति को समझना है। और इस क्षण में जो अपनी चेतना शक्ति होती है जो मन बनकर इधर-उधर कार्य करती है उसे ही नियंत्रित करना है। यह शक्ति ही भूतकाल के संस्कारों से सामग्री लेकर भविष्य-जीवन का ढांचा बनाती है।

भूत और भविष्य पर नियंत्रण

हमारे वर्तमान क्षण शक्ति कहाँ कार्य कर रही है या हमारी वर्तमान की मनोगति कैसी है, इस बात को समझ लेने पर अपने भूत और भविष्य समझ में आ जाते हैं। और जो अपने भूत-भविष्य को इस प्रकार से समझ लेता है वही त्रिकालज्ञ कहलाता है। फिर उसका भूत-भविष्य पर अपना अधिकार भी हो जाता है।

कुछ लोग ऐसे होते हैं जो बीती बातों को तो उतना नहीं सोचते, लेकिन आगे की बातों को बहुत सोचा करते हैं यह आगे के बारे में चिंतित रहना भी भूतकाल का ही वेग होता है। वर्तमान क्षण में न रुक पाना, भविष्य की कल्पना में डुबे रहना बीती बातों का ही वेग है। बीती हुई बातों से अप्रभावित वही होता है जो अपने वर्तमान में जीता है। ऐसे व्यक्ति का भूत मृत हो चुका होता है, वेग रहित हो चुका होता है। वह अतीत के भार से मुक्त होता है, वर्तमान से स्वतंत्र होता है और मुक्तचित्त होता है। ऐसे व्यक्ति के हर वर्तमान की शुरुआत नये सिरे से होती है और तब उसका वर्तमान जो भूत बन जाता है, उसे सताता नहीं, स्मरणों के रुप में सामने आकर उसे खाली समय में या किसी कार्य के क्षेत्र में मानसिकता को क्षोभित नहीं करता।

हमारा वर्तमान का मानना कैसा है, यही महत्त्व की बात होती है। और यह भी बात है कि हम भूत में जो कुछ कर चुके हैं, उसी के प्रभाव से वर्तमान का मानना बनता है। बाद में यही वर्तमान का मानना वर्तमान के परिवेश में न होकर भविष्य के परिवेश में हो जाता है। वर्तमान को तो हम जान ही नहीं पाते। भूत से दौड़ते हैं, बस भविष्य में कुद पड़ते हैं। वर्तमान को लांघ जाते हैं। वर्तमान पर हमारा कोई ध्यान ही नहीं रहता। भूत में हम धकेल देता है। अतः यह बात निश्चित समझ लें कि भूत ही भविष्य को खराब करता है, वर्तमान नहीं। वर्तमान तो बेचारा अपने अस्तिस्व में आ ही नहीं पाता। यदि हम वर्तमान को भूत से निकाल लें, अलग करके उसका सदुपयोग करने लगें तो हमारा भविष्य खराब न होने पाये और हम भूत के प्रभाव से बच जायं।

भूत से छुटकारा

जो अपने वर्तमान का उद्घाटन कर लेता है, भूत उसका पीछा खुद छोड़ देता है। केवल ध्यान भर देने की देर है, मुड़कर पीछे देख भर लेने की देर है। भूत तो अपने आप पिण्ड छोड़ देगा। हम जब तक भविष्य की और भागे जा रहे हैं तब तक भूत हमें खदेड़ रहा है अर्थात ख्यालों से हमें दुखी-सुखी बना रहा है। इस दुख-सुख के प्रभाव में आकर हम सुखद भविष्य की कल्पना में डुब जाते हैं, दिवा स्वप्न देखने लगते हैं और वर्तमान सेत-मेत में चला जाता है।

अरे मन! तुम्हारा सबसे सुनहरा अवसर वर्तमान का है। और यह तो उलझनों में ही बीता जा रहा है, फिर वह कौन-सा समय है जिसे तुम सुखद बनाना चाहते हो।

जो होनेवाला-परिवर्तन जरा, मरण, व्याधि आदि-उससे तुम संतुष्ट नहीं हो, बल्कि भयभीत हो रहे हो, जो नहीं होनवाला है-सदा जवानी, दुखरहित सांसारिक सुख आदि उसका तुम ख्याब देख रहे हो. जो हो रहा है-वर्तमान की स्थिति-उस पर तुम्हारा धान ही नहीं है और जो हो चुका है वह तुम्हारे हाथ आयेगा नहीं। अब खुद निर्णय कर लो कि इस जीवन में तुम कब और किस परिस्थिति में शांत, संतुष्ट रह सकोगे? अगर नहीं रह सकोगे तो तुम्हारे हाथ केवल तुम्हारी तमन्ना रह जायेगी और खरी बात कहें तो अंत में तुम केवल मुंह बाये रह जाओगे।

इतना बात समझ में आ गयी, ध्यान दिया, पीछे

मड़कर देखा, बस भूत का वेग रुक गया । आगे का भागना, भविष्य के लिए दिवास्वप्न देखना बंद हो गया ।

यहीं पर सारी आसक्तियों का अवसान हो जाता है। हमारा जो अतीत के प्रति लगाव था, देखे-सुने-भोगे संस्कारों में प्रेम था और वे स्मरण के रुप में सामने आ-आकर हमारा वर्तमान का समय बरबाद कर रहे थे उनसे कुछ मिलता भी न था, वह वर्तमान की नयी शक्ति में बदल गया। वर्तमान से प्रेम हूआ कि भुत से प्रेम हटा और भूत से प्रेम हटते ही उसकी सारी हरकतें समाप्त हो गयीं ।

ये भ्रुम भूत सकल जग खाया

सारी देनिया अपने भूत से पीड़ित है- ये भ्रम सकल जग खाया । यह भूत शब्द अब बड़ा भयावह लगने लगा है । इसके न जाने कितने माने हो चुके हैं । प्रायः प्रेत के अर्थ में ही यह शब्द अधिक प्रभावी हो रहा है ।

इस भूत से जिसका जितना अधिक लगाव होता है, भूत उस पर उतना ही हावी हो जाता है- जिन जिन पूजा ते जहँड़ाया । यह बीता हुआ समय, जो कुछ भी अर्थ नहीं रखता, फिर भी जिसने उसे जितना माना उसने उसे उतना ही बेवकूफ बनाया । होता भी ऐसे ही है । बीती हुई बातों के बारे में जब तक गौर न करो तब तक कुछ नहीं, उससे कोई दुख-सुख नहीं, हानि-लाभ नहीं और जैसे ही उसे याद किया गया, उसके बारे में कुछ सोचा गया वैसे ही वह सैतान की तरह हम पर सवार ही गयी, तरह- तरह की बाते सोचने लगा । जो बीत गयी सो बीत गयी, अब तो वह सामने आने वाली नहीं, लेकिन उन्हीं पुरानी बातों को याद कर-करके आदमी वर्तमान में रोता-हंसता हे । कब का मरा आदमी याद मात्र से आज रुला रहा है । कब का हुआ झगड़ा आज क्रोध पैदा कर रहा है । कब का हुआ घाटा आज दुखी बना रहा है । कब का मनाया गया उत्सव आज खुशी की लहरें उछाल रहा है । विचार करो कि इन सभी घटनाओं में क्या तथ्य है? असलियत तो जो भी सो हो गयी, बीत गयी। अब तो रह गयीं केवल उनकी यादें और वर्तमान में उनके प्रति लगा मानना । झुठे ही उन बातों को मान-मानकर आज हर्षित, रोमांचित, पुलकित और उद्वेगित हो रहे हैं । इससे फायदा क्या हो रहा है? कुछ नहीं । बस यही वर्तमान का पुलकना, रोमांचित होना, हर्षित-शोकित होना फायदा समझेगा ।

अधिकतर लोग पुरानी बीती बातों को लेकर ही गाली-गलौज, लड़ाई -झगड़ा, मार-पीट, खुन-खराबा, मुकदमेबाजी आदि करते रहते हैं । मानो इनके पास वर्तमान की कोई समस्या ही नहीं है । ये अपनी सारी शक्ति और समय का अपव्यय भूत को सुलझाने के लिए कर दे रहे हैं । यही सब भूत का चक्कर है । इसी चक्कर में लागों की बुद्धि भ्रमित हो जाती है और तब भूत उनके सिर पर और विकराल रुप धारण कर सवार हो जात है । वे भूत के कष्ट से व्यथित होकर भयभित हो जाते हैं और भूत को समझ नहीं पाते । यही भूत (बीते संस्कार) उनके भय में मिलकर उनके लिए प्रेत का रुप बन जाता है और उन्हें भरमाया करता है ।

धार्मिक क्षेत्र में कितने तथाकथित ज्ञानी, साधु, महंत, संन्यासी आदि लोग भी भूत के चपेट से बचे नहीं दिखते । उन्हें भी अपने माने हुए भूत पर बहुत- बहुत आस्था है और उसी के भ्रम से उनका वर्तमान का रवैया बहुत खराब है । राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा, मूसा, मुहम्मद, कन्फ्यूसियस आदि सब भूत हो चुके हैं अर्थात बीत चुके हैं । लेकिन ये महान अपने जमाने में जितना न रहे होंगे उससे कहीं अधिक उनका अनुयायियों पर । ये अनुयायी वर्ग अपने भूत की सुरक्षा के लिए जान तक लेने-देने को तैयार हो जाते हैं । शायद उनको वर्तमान का ज्ञान न होगा और न ही वर्तमान के जीवित लागों मा महत्त्व इनको मालूम होगा ।

वर्तमान क्षण का महत्त्व न मालूम होने कारण जीवन के हर क्षेत्र में भूत हावी हो जाता है । क्षेत्र अलग-अलग होने के नाते भूत का कार्य भले ही भिन्न-भिन्न प्रतीत होता हो, परन्तु परिणाम तो एक ही होता है और वह है बुद्धि-भ्रम, अज्ञान और मुर्खता । इसी को सद्गुरु कबीर ने कहा है जिन-जिन पूजा ते जहँड़ाया ।

भूत के प्रभाव से भविष्य की चिंता बढ़ जाती है और वर्तमान का होश खो जात है । वर्तमान का ध्यान न होने पर मनुष्य एक जोश में, प्रमाद में हो जाता है ऐसी स्थिति में मनूष्य का मन नियंत्रित नहीं रह सकता बुद्धि संतुलित नहीं रह सकती ।

वर्तमान में बरतो भाई

इतना सब कहने-सुनने का मतलब यह हुआ कि अपने जीवन को शुद्ध , संतुलित एवं समुद्ध बनाने के लिए वर्तमान समय पर ज्यादा ध्यान दें । कारण कि वर्तमान के सुधरने से दोनों का सुधार अपने आप हो जाता है । वर्तमान में होश में रहने से केवल इतना ही परिश्रम करना पड़ेगा । अर्थात केवल वर्तमान पर ही निगरानी रखनी होगी । इसी से जीवन की सारी समस्याओं का समाधान हो जायेगा । और वर्तमान से लापरवाह हो जाने पर भूत का पश्चाताप और

भविष्य की चिंता-ये दो भार ज्यादा लद जायेंगे और वर्तमान का खिचखिच तो रहेगा ही।

आज के ही गड़बड़ हो जाने से हमारे जीवन भर का काम गड़बड़ ही चलाता रहता है। क्योंकि आज ही हमेशा सामने रहता है और भूत, भविष्य तो परछाई जैसे मन को लुभाने भर के लिए आगे-पीछे लगे रहते हैं ।व्यक्ति इन्हीं परिछाईयों में भूल जाता है और सामने की परोसी थाली उठ जाती है।

आज का भार निपटा देने से मनुष्य हमेशा सस्ते में रहता है। अन्याथा आज की गफलत सिर पर बोझ-ही-बोझ डालती है। कोई भी काम हो, अभी का काम अभी चटपट में निपटा लो, बस थोड़ी देर की मेहनत से छुट्टी मिल गयी। सिर हलका हो गया, मन प्रसन्न हो गया, चिंता मिटी। और अभी सोचने में बैठ गये तो समय तो बैठेगा नहीं। वह बीता कि अगले समय का भार इस समय के भार में मिलकर भार बढ़ा दिया। बस चित्त असमंजस में फंस गया। अब पहले वाला काम करें कि आगे वाला। ऐसे असमंजस में पड़े-पड़े समय तो बीतता ही जायेगा और आगे-आगे का काम बढ़ता जायेगा तथा पीछे जो कुछ नहीं कर पाये, उसकी चिंता या पछतावा मन को ऐंठता जायेगा। काम का काम नहीं हुआ ओर चित्त उलझन में फंस गया। वर्तमान में चुक जाने पर यह नतीजा होता है।

किसी भी क्षेत्र में यह सूत्र लागू कर सकते हैं। लड़के कालेज में जूलाई में नाम लिखाते हैं तो शुरु-शुरु में थोड़े दिन इस भरोसे में बीत जाते हैं कि सारा वर्ष पड़ा हुआ है, अभी से पढ़ाई क्या शुरु करें? अभी तो गरमी का मौसम है, मच्छर काटते हैं , कुछ शीत लहरी चलने लगे तो जमकर इकट्ठे पढ़ाई कर लेंगे। बस रोजाना पढ़ाई के समय यही सोचकर समय टालते रहे। यूं ही करते-करते सर्दी के दिन आये तो पढ़ाने की नीयत से किताब उठाकर देखे तो पता चला कि कॉलेज में पढ़ाई तो बहुत हो चुकी है। अभी हमें कुछ याद ही नहीं। कई विषय पढ़ा दिये गये। अब कौन विषय पहले शुरु करें, फिर किस अध्याय से शुरु करें आदि-आदि। यही सोचते-सोचते दिमाग उलझ जाता है। जब-जब पढ़ने बैठते हैं तो पोथा देखते ही दिमाग भारी हो जाता है। पहले पढ़ाई की नहीं, आज पहले की चिंता सता रही है। इसी तरह चिंता करते-करते पढ़ाई चौपट हो गयी।

आज के चुक जाने का ही धक्का जीवन के अंतिम दिनों तक पहुंचाता रहता है। आज यदि हम दुरुस्त हों, हमारा व्यवहार शुद्ध हो, हमारा परिवार संभला हो, हमारा समाज सुव्यस्थित एवं अनुशासित हो तो इन सबके भावी जीवन की मंगलकामना करनी ही न पड़े। लेकिन आदमी की हमेशा से यही आदत रही है कि एक तो, वह आज के पहले बीते दिनों की व्यवस्था में मुक्ताचीनी करता है, उसे दोषी बताता है और दूसरे, कल को अर्थात आने वाली पीढ़ी, समाज या देश को सुधारने का नारा लगाता है। इस प्रकार उसका आज का समय वाहियात में बीतता रहा।

गुरुवर कबीर देव का कथन है कि काल करै सौ आज कर, आज करे सो अब। पल में परलय होयगी बहुरि करोगे कब ।। यहां कल से ज्यादा महत्त्व आज का और आज से भी ज्यादा महत्त्व अब का बताया गया है। अब का महत्त्व वास्तव में समझने योग्य है। इस पूरे लेख में हमने वर्तमान काल पर ही चर्चा की है। इसी काल में मन प्रसन्न और तन स्वस्थ रह सकता है।

अज्ञान के कारण व्यक्ति बीते और आने वाले कल का मोह ज्यादा करता है और वर्तमान को वह निरस समझता है। इसी कारण वह जिन्दगी में जो कुछ भी करना ओर देखना चाहता है वह सब उसका मन्सूबा मात्र बनकर रह जाता है। उसके सामने उसका सोचा कुछ हो नहीं पाता है। हो कैसे? वह तो कल के ख्याल में मशगूल है और कल जिन्दगी में आता नहीं। इसलिए कल की खुशहाली भी जिन्दगी में नहीं आ पाती।

जितने होशियार दुकानदार होते हैं, वे उधारु सौदा नहीं देना चाहते। वे दुकान के सामने एक प्लेट पर लिखवाकर टांग देते हैं- आज नकद कल उधार। उन्हें उधार सौदा देने से तो इन्कारी नहीं है।, परन्तु वह सौदा आज नहीं, कल। आज लेना है तो नकद ले जाओ। कल का मौका ही नहीं आता। कदाचित दुकानदार आज उधार और कल नकद का सौदा शुरु कर दे, तब तो उसका दिवाला ही निकला समझो। जो लोग आज काम कल पर टालते जा रहे है। उनकी जिन्दगी का दिवाला ही निकला समझो। ज्यादातर लोग घाटे के अफसोस में ही अपना आखिरी दम तोड़ते हैं।

धर्म-कर्म, नियम-संयम, ज्ञान-ध्यान, सेवा-परोपकार, परिश्रम-पुरुर्षार्थ आदि जीवन के जो करणीय कर्तव्य हैं उनकी शुरुआत अभी तक नहीं किये तो अब तो शुरु कर दें। जो गया सो गया। उसकी चिंता बिलकुल छोड़कर वर्तमान में तुरन्त सचेष्ट हो जाय। बस..... समझो

सारी जिन्दगी सफल। क्योंकि भूत का तो कोई महत्त्व नहीं होता। तो भूत की चिंता ही क्यों करना कि यह नहीं किया, वह नहीं किया आदि। अरे, अभी करो! अब से करो !! बस, मानो सदा से किया और अभी मिला तो सदा से मिला।

ढलती उम्र में ही बीते कल का भाग ज्यादा होता है। लड़कपन और जवानी में तो (आनेवाले) कल का चांस जयादा रहता है। अतः इस उम्र में अतीत का दबाव कम और भविष्य का आकर्षक ज्यादा रहता है। इसीलिए जिन्दगी के ये क्षण बेपते में कट जाते हैं। लेकिन याद रखें कि इस जिन्दगी का फाइनल ड्रा बुढ़ापा है, जवानी नहीं। खास महत्त्व बुढ़ापे की जिन्दगी का होता है। इसलिए बुढ़ापे को ही कल के बोझ से हलका करना है।

बंधन नहीं स्वरुप में, केवल समझ को फेर

अब एक समस्या लोगों के सामने यह रह जाती है कि जो कुछ भी कर्म अभी तक कर चुके हैं उनके संस्कारों को मिटायें कैसे? मन नहीं मानता, उनसे एकाएक मन तोड़कर नये कर्म, निष्काम कर्म करना कैसे शुरु करें?

यह काम सरल से सरल है और कठिन तो है ही। जब तक अज्ञान, ममता व अहंकार की ग्रंथि खुलती नहीं तब तक कठिन ही है। जिस घड़ी अज्ञान की ग्रंथि खुल जायेगी, समझ में परिवर्तन आ जायेगा उस समय से यह काम सरल ही नहीं वरन काम ही नहीं रह जायेगा। जिन कर्मों की याद हमें सताया करती है, नासमझी के कारण हमारा मन उनसे चिपका होता है, इसलिए वे हमें ज्यादा हैरान करती हैं। वैसे उनसे हम अपना चित्त मोड़ दें तो वे याद मात्र के बंधन हमसे चिपके थोड़े है कि अलग नहीं होंगे। संत विशाल देव का कहना है-बंधन नहीं स्वरुप में, केवल समझ को फेर। फेर मिट्यो जब बोध भा, छूट लक्ष मन घेर।

जिन बुरे कर्मों की यादें हमको सताया करती हैं उनका कारण हमारे मन की उन कर्मों में आसक्ति है, चिपकाव है। अन्यथा जहां से मनुष्य का मन हट जाता है, फिर उसे वह स्वप्न में भी नहीं याद करना चाहता। तो समझ की बात है। उन कर्मों से हमासरा चित्त हट जाना चाहिए। गुरुदेव कहते हैं कि केवल समझ का फेर है। समझ में परिवर्तन हुआ कि तुरन्त लक्ष्य बदला। लक्ष्य बदलने के बाद बिलकुल छुट्टी मिल गयी।

दिल से मुक्ति का नाम लेते ही व्यक्ति मुक्त है

कल (अतीत) के बोझ से हलका करने का यही मात्र उपाय है। अब इसको करने की मर्जी व्यक्ति की अपनी है। इसीलिए कहते हैं कि बन्धनों से मुक्त होने के लिए न समय की आवश्यकता है, न पुरुषार्थ की। इस बात को सुनकर लोग चौंकेंगे। लेकिन बात हकीक़त है। मुक्त होने के लिए केवल अपनी मर्जी भर बनानी है, अपने को रोजी भर करना है। यहां तक कि दिल से मुक्ति का नाम लेते ही व्यक्ति मुक्त है, अन्यथा जहां दिल लगा है वहां तो लगा ही है। मुक्त होने में जो देरी है सो अपनी मर्जी तैयार करने में। इसी के लिए ज्ञान-ध्यान, समझौता-समाधान की जरुरत पड़ती है। जब से बात समझ में आ जाती है, व्यक्ति तुरंन्त मुक्त होने को तैयार हो जाता है, बल्कि मुक्ति का अनुभव भी करने लगता है।

तो बीती हुई बातों में कोई दम थोड़े रहता है। लेकिन मन में जैसी समझ-निश्चयता होती है वैसी चाल वह चलता है। समय तो अपनी ही रफ्तार से बीताता जा रहा है। कुछ प्राप्त करने की जिज्ञासा मन को न जाने कहां-कहां भटका रही है। अभी वर्तमान में रुकने का मन नहीं हो रहा है। कारण कि जो मिलना चाहिए वह मिला नहीं, इसलिए वर्तमान में असन्तोष है, आकृप्ति है। और कुछ प्राप्त करने की लालसा मन को भविष्य में धकेल रही है। साधक को चाहिए कि वह अपने जीवन के वर्तमान क्षण में अपने को जरुर रोके, ठहराये। वह भूत-भविष्य की तरफ से अपना चिंतन सिमेटकर, लक्ष्य बटोरकर वर्तमान में रुके। वह इधर-उधर की ऐंचा-खैंची से मुक्त होकर इसी में मग्न हो जायेगा और इस मानता में उसे जिस विरामकाल की अनुभूति होगी वह उसकी सब प्रकार की लालसा को अथवा जिज्ञासा को जरुर शांत कर देगी।

काल क्या है?

काल शब्द से प्रायः लोग डरा करते हैं और इससे बचने प्रयास करते हैं। इस डर का कारण काल को न समझना ही है।

काल का अर्थ समझने वालों में से कुछ लोग समय को काल कहते हैं। लेकिन ज्यादातर लोग काल को मृत्यु या एक ऐसा भूत समझते हैं जाते आदमी को खा ताजा है यह सब मन में काल का भ्रम है। मन में जो अनजाने घटना का भय बना रहता है यही काल है। अब रही बात काल बचने की। तो काल से वही बच सकता है जो काल के संबंध में फैले हुए तमाम भ्रमों से मुक्त हो। इसके लिए काल शब्द की चर्चा विस्तार से की ही गयी।

मनुष्य केवल अपनी कल्पना से मरता है

जहां काल का अर्थ मृत्यु से समझा जाता है और उस मृत्यु से बचने का सवाल है तो यह भी बात समझ लें कि आदमी वास्तव में मरता नहीं । वह मरता है केवल अपनी कल्पना से । जब वास्तव में उसकी मृत्यु होती है तब तो वह जान भी नहीं पाता कि वह मर रहा है या मर गया । इस बात को समझने के लिए नांद का उदाहरण लिया जा सकता है । नींद ज़ब आती है तो आदमी सो जाता है । सोता हुआ आदमी नींद को क्या जानेगा । नींद तो तभी तक जानी जाती है जब तक नींद आती नहीं, दूर रहती है । तब तक इसलिए जानते हैं कि उसके बारे में कल्पना किया करते हैं । कल्पना करते-करते जब नींद आ जाती है तब हम जान भी नहीं पाते कि क्या हुआ । कोई भी इसकी आजमाइश कर सकता है । नींद कब आती है इसका समय बताने वाला आज तक कोई हुआ ही नहीं । कितने लोग घड़ी लेकर लेटे और जानने का प्रयास किये कि आज उनको निद्रा कितने बजे आती है । लेकिन जब तक उनको घड़ी के समय का ज्ञान रहा तब तक वे जागते रहे और नींद की प्रतीक्षा करते रहे । तो यह समय तो नींद आने का माना नहीं जायेगा और जब नींद आ ही गयी तो घड़ी कौन देखे कि कितने बजे हैं और उनको नींद का समय जान नहीं पाये ।

इसी तरह अपनी मृत्यु को जान पाना किसी के लिए संभव नहीं है । दूसरों को मरते देखकर अपनी मृत्यु की लोग कल्पना किया करत हैं और उसी से उनको भय भी लगा रहता है । वह कल्पना करना भी भविष्य का खिंचाव है, जो मन का एक विकार है । यदि विवेक से यह कल्पना मिट जाय तो मृत्यु की कल्पना न हो और कल्पना न हो तो अपने को मरना कहां पड़ा । मरा तो वह जो मृत्यु को न जाना और मृत्यु को जानने वाला जिन्दा ही रहता है । लोग डर मात्र से ही मरते हैं और समय से पहले ही मरे रहते हैं । जब वास्तव में मरने की बारी आती है तो नींद की तरह वे अदृश्य हो जाते हैं और जान भी नहीं पाते कि कौन मरा, कब मरा ।

ज्यादातर लोग भूतकाल की सोच में ही जीते है। । इसी सोच और पश्चाताप के एवज में उनको भविष्य का ख्याल करना पड़ता है, परना वर्तमान में जीते रहें तो भूत-भविष्य दोनों से फुरसत । वर्तमान में व्यक्ति की मृत्यु होती नहीं । वर्तमान में तो वह द्रष्टा, साक्षी होता है । सबको जान रहा होता है । दूसरों के हिसाब से यदि वह मर ही गया, फिर भी तो वह सबको, यहां तक कि अपने को भी जानते हुए, अनजान अवस्था में, तो मृत्यु का पता कैसे हुआ ? वह जानते-जानते ओझल मात्र हो गया ।

अंत में, सत श्री अकाल !

एक बात और समझने की है । वही यह है कि वर्तमान काल की गणना भी भूत और भविष्य काल की तुलना में होती है । भूत का बोझ और भविष्य का खिंचाव मिट जाने पर वर्तमान काल भी शून्यकाल में बदल जाता है । शून्यकाल यानी कालातीत अवस्था । मन में जब तक ऊहापोह या खींचतान की स्थिति होती है तब तक व्यक्ति काल के दायरे में बंधा हुआ होता है । इससे मुक्त होते ही वह काल के दायरे से भी मुक्त हो जाता है । उसी को कालजयी भी कहते हैं ।

गुरु नानक संप्रदाय में लोग सत श्री अकाल कहकर एक-दुसरे का अभिवादन करते हैं । यहां पर अकाल शब्द पर धयान दें । अकाल का मतलब होता है काल रहित । इस प्रकार सत श्री अकाल का तात्पर्य होता है- वह सत्य है जो काल रहित है । काल से रहित वही हो पाता है जो भूत के व्यर्थ चिंतन एवं भविष्य की अनावश्यक कल्पनाओं से मुक्त होकर वर्तमान के सहज क्षण में स्थित होता है ।

– कबीर पारख संस्थान से समीर

.....***.....

श्रावणी उपकर्म–हैदराबाद बलिदान दिवस और श्रीकृष्ण जन्माष्टमी पर्व सोल्लास मनाएँ गएँ।

१) आर्य समाज, खंडवा - आयोजक : श्री. कृष्णलालजी आर्य
२) आर्य समाज, परतवाडा - आयोजक : श्री. मदनकुमार जाभुर्णे
३) आर्य समाज, बैतूलगंज - आयोजक : मंत्री, आर्य समाज, बैतूलगंज
४) आर्य समाज, शिवनी - आयोजक : मंत्री, आर्य समाज, शिवनी
५) आर्य समाज, दिग्रस - आयोजक : श्री. ब्रीजलालजी राठी
६) आर्य समाज, आकोला - आयोजक : श्री. वसंतरावजी मदनसुरे
७) आर्य समाज, गाडगेनगर, अमरावती - आयोजक : श्री. रमेशपंत घोडसकर

॥ ओ३म॥

आर्य अनाथालय की ओर से आर्थक सहायतार्थ अपील

मात्पित् विहीन वैशिशवो येन रक्षितः।
सफलं जीवन तस्य आत्मार्थ को न जीवति॥

अर्थात्- माता-पिता विहीन और निराश्रित का पालन-पोषण करने से ही जीवन सफल बनता है। कबीर दास जी भी दान का महत्व समझाते हुए कहते है -

चिड़ी चों च भर ले गई, नदी न घट्यो नीर।
दान दिए धन ना घटे, कह गए भक्त कबीर॥

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने इस उत्तम भाव को साकार रूप प्रदान करते हुए सन् १८७७ ईस्वी को आर्य अनाथालय की स्थापनाप की। आप सब के फल स्वरूप आज यह उत्तरी भारत की सुप्रसिद्ध तथा लोकयि बाल कल्याणकारी समाज सेवी संस्था बन चुी है। यहां अनाथ एवं असहाय बच्चों के पूर्णतः पालन पोषण के रूप में महत्वपूर्ण कार्य किया जा रहा हैं। भूतकाल में हजारों बच्चे यहां से पोषण एवं शिक्षा प्राप्त कर राष्ट्र सेवा के भिन्न-भिन्न क्षेत्र में कार्यरत है। अब यहां रह रहे (१३०) निराश्रित, पिछड़े, कमजोर एवं निर्धन वर्ग के बच्चे पूरी तरह शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, शैक्षणिक, नैतिक एवं व्यावहारिक योग्यताएं प्राप्त कर जीवन संघर्ष के लिए कटिबद्ध हो रहे है। स्वावलम्बन, आत्मनिर्भरता औ ररोजगार के प्रति आकृष्ट करने केलिए इन बच्चों को पढ़ाई के अतिरिक्त आई.टी.आई., नर्सिंग आदि संस्थानों से कोर्स भी करवाए जात है। विवाहयोग्य कन्याओं का योगय वरों से विवाह भी करवाया जाता हैं।

हम इन बच्चों के पालन-पोषण में धन की कमी नहीं आने देते । आप सबके सद्प्रयासों से ही हम यह समाज सेवा काय कार्य कर पा रहे है। परन्तु बहुत तेजी से बढ़ती महंगाई के कारण आप लोगों का सहयोग भी कम पड़ता जा रहा है और यह सेवा का कार्य भी सोचनीय होता जा रहा है।

इन बच्चों का सम्पूर्ण व्यय लगभग (११५) वर्ष पुराने भवनों का रखरखाव एवं सड़कों का पुनःनिर्माण एवं मुरम्मत कार्य तथा नव निर्माण कार्य यह सब कुछ महंगाई के कारण सम्भावनाओं से परे होता जा रहा है। यह सभी समस्याएं महंगाई के कारण मुशिफ़ल होती जा रही हैं। हमें आर्कि सहायोग, व अच्छी नसल की गायों की भी अति आवश्यकता हैं। यज्ञशाला भवन का नव निर्माण कराना बहुत ही आवश्यक हो गया है, जिसका निर्माण सन् १९२६ में हुआ था, जोकि जर्जर अवस्था में है। कन्या आश्रम में रसोई भी बनाई जानी है, पुरानी रसोई जर्जर अवस्था के कारण तोड़ दी गई है।

हम आप सब सेविनम्र निवेदन करते हैं कि यथाशक्ति, दिल खोलकर दानराशि प्रदानकर न केवल आप पुण्ययश के ही भागी बने बल्कि इस समाजसेवी एवं बालकल्याणकारी संस्था के स्वप्नों को साकार करने मे हमारी महत्वपूर्ण सहायता करें। मुझे पूर्ण आशा है कि इन अनाथ बच्चों के हृदय की गहराईयों से निकली शुभकमानाएं एवं प्रार्थना अवश्य प्रभु दरबार मे सुनी जायेगी और आपके भंडार भर उठेंगे। आपके ही परम सहयोग से हम इस सेवा एवं संकल्प यज्ञ को सुसम्पन्न कर पाएंगे।

दान राशि मैनेजर आर्य अनाथालय, फिरोजपुर छावनी के नाम पर चैक/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर/ऑनलाईन एवं नगद भेजने की महान् कृपा करे। आपकी दान राशि पर आयकर मुक्त ८०जी के अन्तर्गत आयकर की छूट मिलेगी।

सुस्वास्थ्य, मंगल कामना एवं हार्दिक आभार सहित :-

श्री पूनम सूरी
प्रधान
आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा
एवं डी.ए.वी. कॉलेज प्रबंधकत्री समिति
नई दिल्ली

डॉ0 एस0 के0 शर्मा
महामंत्री
आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा
मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली

डॉ0 सतनाम कौर
मैनेजर
आर्य अनाथालय,
फिरोजपुर छावनी, पंजाब

.....***.....

आर्य सेवक, नागपुर

प्रति, _____

_____

प्रकाशक : अशोक यादव, प्रबंधक संपादक एवं मंत्री आर्य प्रतिनिधि सभा
मध्यप्रदेश एवं विदर्भ, नागपुर फोन : ०७१२-२५९५५५६ द्वारा उक्त सभा के लिये प्रकाशित एवं प्रसारित
मुद्रक : फोन :